शैक्षणिक संदर्भ

वर्ष: 19 अंक 108 (मूल क्रमांक 165)
जुलाई-अगस्त 2026 मूल्य: ₹ 50.00

सम्पादन
राजेश खिंदरी
माधव केलकर

सहसम्पादक
पारुल सोनी

सम्पादकीय सहयोग
हिमांशु बावनकर
अतुल वाधवानी

सम्पादकीय सलाहकार
सुशील जोशी
उमा सुधीर

आवरण: राकेश खत्री

वितरण: झनक राम साहू

सहयोग: कमलेश यादव

शैक्षणिक
संदर्भ

वर्ष: 19 अंक 108 (मूल क्रमांक 165)
जुलाई-अगस्त 2026 मूल्य: ₹ 50.00

मूल्य: ₹ 50.00

एकलव्य फाउण्डेशन
जमनालाल बजाज परिसर
जाटखेड़ी, भोपाल-462 026 (म.प्र.)
फोन: +91 755 297 7770, 71, 72, 4200944
www.sandarbh.eklavya.in
सम्पादन: sandarbh@eklavya.in
वितरण: circulation@eklavya.in

अब *संदर्भ* आप तक पहुँचेगी मैग्ज़ीन पोस्ट से।

सदस्यता शुल्क	एक साल (6 अंक)	तीन साल (18 अंक)	आजीवन
	450.00	1200.00	10,000.00

मुखपृष्ठ: साल्वाडोर डाली की पेंटिंग *द आई ऑफ सर्रियलिस्ट टाइम।* अगर इस पेंटिंग को समझने में आपने अपना समय खर्च किया है, तो थोड़ा समय 'समय' को समझने में भी खर्च कर लीजिए। वास्तविकता का इतना अटूट हिस्सा, मगर गौर करें तो वास्तविकता ही टूटती नज़र आती है इस 'समय' में। ऐसे में, दिलचस्प होगा इस अवधारणा को भौतिकी की नज़र से देखना। पृष्ठ 27 पर, अजय शर्मा का लेख इसमें आपकी मदद करेगा।

कवर-3: कहा जाता है कि कुम्हार ततैया के पास तिलिस्मी शक्तियाँ होती हैं। वे इल्लियों के कान में मंत्र फूँककर उन्हें अपने कलश में कैद कर लेती हैं, और कुछ दिन में जब यह जादू रंग लाता है तो उस कलश से इल्ली नहीं, बल्कि एक नई कुम्हार ततैया निकलती है। रोमांचक है न? इस जनश्रुति के पीछे कितनी सच्चाई है, जानने के लिए पढ़िए कीड़ों के जगत पर चर्चा करते युवान एविस के साथ फज़ल रशीद के इस साक्षात्कार को, पृष्ठ 41 पर।

पिछला आवरण: *कॉलर्ड आउलेट की तस्वीरें।* पहली तस्वीर में वह आपको देख रहा है। मगर दूसरी तस्वीर में भी तो वह आपको देख रहा है न? अब जब वह हमें देख रहा है तो हम उस पर हमला कैसे कर सकते हैं! ऐसा शिकारी सोचा करते होंगे, जब 'ऑटोमिमिक्री' के इस उस्ताद से उनका पाला पड़ता होगा। ऑटोमिमिक्री को और भी हैरतअँगेज़ उदाहरणों से समझने के लिए पढ़िए, पृष्ठ 05 पर संकेत राउत के लेख को।

यह अंक त्रिवेणी एजुकेशनल ट्रस्ट के वित्तीय सहयोग से प्रकाशित किया जा रहा है।

LINK : Cover 1 - https://modernism.com/items/3573/prints/10118-7639-eye-surrealist-time-lithograph-salvador-dali
Cover 3 - https://hyg.ipm.illinois.edu/article.php?id=1204
https://www.moggillcreek.org.au/news/wildlife-matters-nest-building-by-a-potter-wasp/
Cover 4 - https://www.pinterest.com/pin/423338433722330578/

इस अंक में उन चित्रों के स्रोत जिनके बारे में चित्र या लेख के साथ उल्लेख नहीं है, इंटरनेट की विविध वेबसाइट हैं।

बाल साहित्य, बच्चों और बड़ों की ज़िन्दगी में इसकी अहमियत और पुस्तकालयों की भूमिका को हर नज़रिए से समझने की कोशिश करती हुई एक ज़रूरी किताब। जानिए, कैसे किताबें बच्चों में पढ़ने का आनन्द जगाती हैं, उनकी कल्पनाशक्ति को बढ़ाती हैं और सीखने की बुनियाद तैयार करती हैं।

शिक्षकों, अभिभावकों, शिक्षा से जुड़े लोगों और बाल साहित्य में रुचि रखने वाले हरेक व्यक्ति के लिए एक उपयोगी पुस्तक।

आगामी प्रकाशन

पढ़ना-लिखना और बाल साहित्य

मेरे अनुभव

- कमलेश चन्द्र जोशी

मूल्य: ₹160

आज ही अपनी प्रति बुक करें:

एकलव्य फाउंडेशन
जमनालाल बजाज परिसर, जाटखेड़ी, भोपाल - 462 026 (मप्र)
फोनः **+91 755 297 7770-71-72;** ईमेलः **pitara@eklavya.in**
www.eklavya.in | www.eklavyapitara.in

एकलव्य

कल और कल में फर्क

कल जो था, वह आज नहीं है, और आज जो है, वह कल नहीं होगा। मगर इन बदलावों के क्या मायने हैं? समय का एक सीध में बहना मालूम पड़ना, आखिर कैसे? बदलाव अव्यवस्था या एंट्रॉपी में इज़ाफा करते हैं, और बदलाव ही समय का इशारा करते हैं। मगर अव्यवस्था अगर व्यवस्था में तब्दील होने लगे तो क्या समय उलटा बहने लगेगा? थोड़ा समय निकालकर, समय को भौतिकी की नज़र से समझने की कोशिश कीजिए। समझने के इस सफर में, अजय शर्मा का यह लेख मददगार साबित हो सकता है। क्या आपका यह लेख पढ़ना दर्शनीय होगा?

27

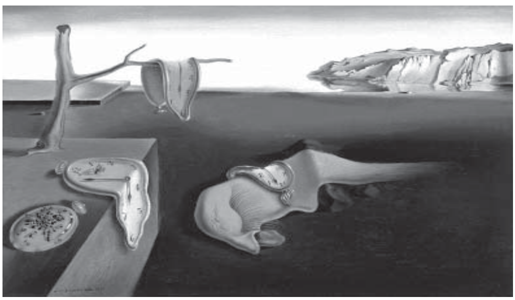

ओझल दुनिया का नुमाया होना

सम्भावना है कि यह लेख पढ़ते वक्त आपका पाला किसी-न-किसी तरह के कीड़े से पड़े। यानी, रोज़मर्रा के किसी आम-से काम के दौरान भी आपका नाता कीड़ों से जुड़ता ही है। मगर आप अपने इतने निकटतम साथियों के बारे में कितना सोचते हैं? सोचते भी हैं तो क्या सोचा करते हैं? क्या कहानियाँ हैं इनकी? अमूमन, ज़ाहिर वजूद के बावजूद ओझल और ना-काबिल-ए-बर्दाश्त करार दिए जाने वाले इन जीवों का जीवन कितना गहरा और कितना तिलस्मी होता है, यह युवान और फज़ल की इस गुफ्तगू में झलकता है। इस दुनिया में जीने का हम-सा (या शायद, हमसे भी ज़्यादा) हक, क्या इन सहचरों को मिल सकता है? इस साक्षात्कार को पढ़ते हुए, ज़रा सोचिएगा।

41

शैक्षणिक संदर्भ

अंक-108 (मूल अंक-165), जुलाई-अगस्त 2026

इस अंक में

05 | खुद की नकल, खुद की सुरक्षा
संकेत राउत

20 | ख्वारिज़्म और उनका अलज़ाब्र
आमोद कारखानीस

27 | कल और कल में फर्क
अजय शर्मा

41 | ओझल दुनिया का नुमाया होना
युवान एविस के साथ फज़ल रशीद की बातचीत

51 | जिन्होंने हमें सिखाया कि पत्थर बोल सकते हैं
परविंदर सिंह

59 | बच्चे बतौर भावी नागरिक और नागरिकशास्त्र
प्रकाश कान्त

73 | इंस्पेक्टर मातादीन चाँद पर
हरिशंकर परसाई

84 | भारतीय रुपया अमेरिकी डॉलर के मुकाबले क्यों गिरता है?
सवालीराम

आपने लिखा

संदर्भ अंक-159 (जुलाई-अगस्त, 2025) में प्रकाशित 'ग्रीन थाई करी' में अस्फिया ने जर्मन प्रवास के बारे में जो लिखा है, वह वर्षों तक याद रहेगा। मेरा बस चले तो मैं इसे किसी पाठ्यक्रम में लगा दूँ। कितने सबक हैं - अपनी भाषा के प्रति प्रेम का, एक विदेशी द्वारा मदद करने का आदि। लेकिन उससे भी बड़ा सबक तो उन दो शराबियों को एक जर्मन महिला द्वारा डाँटना है। वह महिला इन्हें जानती भी नहीं है लेकिन वह यह बर्दाश्त नहीं कर सकती कि कोई विदेशी औरत के साथ ऐसा व्यवहार करे। क्या हमारे देश में यह सम्भव है? एयरपोर्ट पर उतरते ही विदेशी लूट लिए जाते हैं और अंजाम यह कि हमारी इन्हीं हरकतों की वजह से इतने विशाल देश में कितने कम लोग आते हैं।

क्या हमारे यहाँ कोई महिला ऐसे गुण्डों को पूँछ दबाकर भागने के लिए विवश कर सकती है? और फिर यह महिला विकलांग है लेकिन इन सबके बावजूद वह विश्व दर्जे की खिलाड़ी है और उस खेल की अन्तर्राष्ट्रीय ओलम्पिक अध्यक्ष भी है। लेकिन कितनी विनम्र! एक आम आदमी की तरह! असली लोकतंत्र यही है। भारत जैसे देशों में तो ऐसे उदाहरण ढूँढने पर भी नहीं मिलेंगे। बधाई लेखिका को। बस, एक प्रश्न दिमाग में घूम रहा है कि इसका शीर्षक क्या दिया जाए। 'सच्ची कहानी' कहने से तो बात नहीं बनती। क्या 'जर्मन प्रवास के कुछ दिन' जैसा कुछ ज़्यादा अच्छा नहीं रहता?

प्रेमपाल शर्मा,
दिल्ली

संदर्भ अंक-159 (जुलाई-अगस्त, 2025) में अमित और जयश्री का लेख 'बच्चों का बैंक' पढ़ा। कई दिनों बाद कोई बहुत अच्छा लेख पढ़ने को मिला। एक शिक्षिका होने के नाते यह लेख मेरे लिए कई मायनों में खास और एक नया नज़रिया देने वाला रहा। जैसे नाम से ही पता चल रहा है कि बच्चों के पैसे रखने की एक सुरक्षित जगह। बच्चे अपने घर से स्कूल में कई तरह की चीज़ें और वस्तुएँ लाते हैं और उनके खोने का डर लगातार उनको सताता रहता है। खासकर जब स्कूल आवासीय हो तो यह मुश्किल और बढ़ जाती है। लेकिन शिक्षक बच्चों से लगातार इसके समाधान के लिए बात करते रहे और इसके लिए एक उपाय निकाला कि बच्चों का एक बैंक बने और उसे बच्चों द्वारा ही संचालित किया जाए। इससे बच्चों के एक समूह को बैंक संचालित करने का अनुभव हुआ।

इस दौरान बच्चों में कई सारी दक्षताएँ भी विकसित होती हैं जैसे हिसाब-किताब लिखने का कौशल और एक बैंक को संचालित करने के नियम। बच्चों को जब कोई काम करने के लिए दिया जाता है तो उससे उनके आत्मविश्वास में भी इज़ाफा होता है। इसी तरह के कुछ छोटे प्रयास अपने स्कूल में भी बच्चों के साथ करने का एक विचार देता हुआ बढ़िया लेख।

अंजु जॉनसन,
प्राथमिक शाला इंदिरा नगर
जनशिक्षा केन्द्र - कस्तूरबा,
सीहोर (मप्र)

खुद की नकल, खुद की सुरक्षा
क्या है ऑटोमिमिक्री?

संकेत राउत

न्यू जर्सी के उस स्कूल का एक छात्र, जब उसके सभी दोस्त कक्षा में बैठे थे, स्कूल परिसर में घूमकर पतंगों की प्रजातियाँ खोज रहा था। उसके शिक्षक ने उसे यह सज़ा दी थी। स्कूल छूटने तक उसने यही काम किया। स्कूल छूटते समय उसके शिक्षक ने उसे बुलाया और पूछा कि क्या वह दिन उसके लिए सही था, ठीक था?

उस छात्र ने शिक्षक को एक शब्द में उत्तर दिया, "निश्चित रूप से!"

उस छात्र का नाम था - लिंकन ब्राउर (1931-2018)। लिंकन ब्राउर ने कीट विज्ञान में बड़ा योगदान दिया। विशेष रूप से मोनार्क तितलियों (*Danaus plexippus*) पर उनका शोध महत्वपूर्ण रहा। इन तितलियों के संरक्षण के लिए भी लिंकन ब्राउर ने विशेष प्रयास किए।

लिंकन ब्राउर को कम उम्र में ही तितलियाँ और पतंगे (moth) एकत्र करने का शौक लग गया था। इसी रुचि के चलते उन्होंने इन प्रजातियों के जीवविज्ञान का अध्ययन शुरू किया। कई दशकों तक लिंकन ब्राउर मोनार्क तितलियों के अग्रणी विशेषज्ञ के रूप में जाने जाते रहे। इन्हीं मोनार्क तितलियों के अध्ययन के आधार पर उन्होंने 1967 में सर्वप्रथम 'ऑटोमिमिक्री' की संकल्पना प्रस्तुत की। उनके सम्मान में इस प्रकार के अनुकरण को 'ब्राउरियन अनुकरण' भी कहा जाता है। यह मिमिक्री अब तक वर्णित अन्य प्रकारों से कुछ भिन्न है। आइए, मोनार्क तितली के उदाहरण के माध्यम से इसे समझने का प्रयास करें।

मोनार्क तितलियाँ

अमेरिका महाद्वीप में पाई जाने वाली मोनार्क तितलियाँ प्रवास के लिए प्रसिद्ध हैं। मोनार्क तितलियों का प्रवास प्रकृति के सबसे आश्चर्यजनक दृश्यों में से एक है। हर साल, लाखों तितलियाँ कनाडा और संयुक्त राज्य अमेरिका की कड़ाके की ठण्ड से बचने के लिए लगभग 3,000 मील (4,800 किलोमीटर) की लम्बी यात्रा तय करके मध्य मैक्सिको के ओयामेल देवदार के जंगलों में पहुँचती हैं। इस अविश्वसनीय यात्रा की सबसे खास बात यह है कि अपने अल्प जीवनकाल के कारण ये तितलियाँ अपनी पूरी यात्रा को एक ही पीढ़ी में पूरा नहीं

चित्र-1: मोनार्क तितली

करतीं, बल्कि अगली पीढ़ियाँ भी उसी मार्ग को जारी रखती हैं, जहाँ उनके पूर्वजों ने उन्हें छोड़ा था। वे नेविगेशन के लिए सूर्य की स्थिति और पृथ्वी के चुम्बकीय क्षेत्र का उपयोग करती हैं, और बसन्त आने पर वे फिर से उत्तर की ओर अपनी वापसी की यात्रा शुरू कर देती हैं।

मोनार्क तितली कुछ हद तक स्ट्राइप्ड टाइगर तितली से मिलती-जुलती दिखाई देती है, जो बेट्सियन मिमिक्री में मॉडल की भूमिका निभाती है। स्ट्राइप्ड टाइगर की तरह मोनार्क तितली भी एपोसेमैटिज़्म* (aposematism) का उत्कृष्ट उदाहरण है। यह भी मुख्यतः मिल्कवीड (Asclepias spp.) पौधों पर निर्भर रहती है। इन पौधों के लेटेक्स-युक्त रस में कार्डेनोलाइड नामक विषैले यौगिक पाए जाते हैं, जिन्हें मोनार्क अपने शरीर में संचित कर लेती है। यही विषैले यौगिक इसे शिकारी प्रजातियों के लिए अखाद्य बना देते हैं। परिणामस्वरूप, स्ट्राइप्ड टाइगर की भाँति मोनार्क के चटकीले रंग भी शिकारियों के लिए चेतावनी का संकेत देते हैं कि उससे दूर रहना ही सुरक्षित है।

मिल्कवीड पौधों में पाए जाने वाले कार्डेनोलाइड को अधिकांश कीट पचा नहीं पाते। लेकिन स्ट्राइप्ड टाइगर, कॉमन क्रो या फिर कॉमन

* *जीवों की एक रक्षात्मक रणनीति, जिसमें कोई जीव अपने चटकीले रंगों, विशिष्ट पैटर्न, गन्ध, ध्वनि या अन्य स्पष्ट संकेतों के माध्यम से सम्भावित शिकारियों को यह चेतावनी देता है कि वह विषैला, अखाद्य, खतरनाक या किसी अन्य कारण से नुकसानदायक है।*

Cynanchum (स्वैलो-वर्ट) वंश के कुछ देशी और विदेशी मिल्कवीड पौधे भी मोनार्क तितलियों को अपने ऊपर अण्डे देने के लिए आकर्षित करते हैं, परन्तु Cynanchum प्रजातियाँ मोनार्क इल्लियों के लिए उपयुक्त आहार नहीं हैं, और इसके चलते इन पर पलने वाली इल्लियाँ प्यूपा अवस्था तक पहुँचने में असफल हो जाती हैं। इस प्रकार ये पौधे अनिवार्यतः 'झूठे परपोषी' (false hosts) हैं, जो कार्डेनोलाइड से सुरक्षा प्रदान नहीं करते।

रोज़ तितली की इल्लियों की तरह ही मोनार्क इल्लियाँ भी मिल्कवीड की पत्तियाँ खाते समय, इन्हें अपने शरीर में संचित कर लेती हैं, जिससे वे स्वयं सम्भावित शिकारियों के लिए विषैली बन जाती हैं।

परन्तु सभी मिल्कवीड प्रजातियों में कार्डेनोलाइड की मात्रा समान नहीं होती, और यही तथ्य ऑटोमिमिक्री को समझने के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है। कुछ मिल्कवीड प्रजातियों में कार्डेनोलाइड विष का स्तर अन्य प्रजातियों की अपेक्षा अधिक होता है, जबकि कुछ में यह कम होता है। कार्डेनोलाइड विष के स्तर में पाई जाने वाली यही विविधता ब्राउरियन अनुकरण यानी मिमिक्री की कुंजी सिद्ध होती है।

जिन मिल्कवीड प्रजातियों में कार्डेनोलाइड विष की सान्द्रता बहुत कम होती है, उन पर पली-बढ़ी मोनार्क इल्लियाँ अपने शरीर में पर्याप्त मात्रा में विष संचित नहीं कर पातीं। परिणामस्वरूप, उनसे विकसित होने वाली मोनार्क तितलियाँ शिकारियों के लिए काफी हद तक स्वादिष्ट (palatable) सिद्ध होती हैं। अर्थात्, बेट्सियन अनुकरण में जहाँ अनुकरणकर्ता प्रजाति स्वादिष्ट होती है, वहीं ब्राउरियन अनुकरण में एक ही प्रजाति की सभी मोनार्क तितलियाँ समान रूप से अखाद्य नहीं होतीं; कुछ अपेक्षाकृत स्वादिष्ट भी हो सकती हैं।

एक ही प्रजाति की होने के कारण, खाद्य और अखाद्य, दोनों प्रकार की मोनार्क तितलियों का रंग-रूप एक-जैसा होता है। यद्यपि शिकारी अपेक्षाकृत स्वादिष्ट मोनार्क तितलियों को खा सकते हैं, फिर भी यदि उन्हें पहले किसी अत्यधिक विषैली और अखाद्य मोनार्क तितली को खाने का अप्रिय अनुभव हो चुका हो, तो वे बाद में उसी रंग-रूप वाली हानिरहित मोनार्क तितलियों पर भी हमला करने से परहेज़ करते हैं।

आम तौर पर, मॉडल और अनुकरण करने वाली प्रजातियाँ अलग-अलग होती हैं। ब्राउर ने इस तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित किया कि मोनार्क तितलियों के इस मामले में अनुकरण एक ही प्रजाति के भीतर हो रहा है। इसलिए उन्होंने इसे अनुकरण का एक अलग प्रकार माना,

जिसे 'ऑटोमिमिक्री' कहा गया। दूसरे शब्दों में, ऑटोमिमिक्री में मॉडल और अनुकरणकर्ता, दोनों एक ही प्रजाति के सदस्य होते हैं। इस प्रकार, अपेक्षाकृत हानिरहित सदस्य, उसी प्रजाति के अधिक विषैले एवं अखाद्य सदस्यों से मिलते-जुलते होने का लाभ उठाकर शिकारियों को भ्रमित करते हैं।

लिंकन ब्राउर ने न केवल ऑटोमिमिक्री की अवधारणा को स्पष्ट किया, बल्कि मोनार्क तितली पर कई रोचक प्रयोग भी किए, जिन्होंने इस अनुकरण की व्याख्या को मज़बूत वैज्ञानिक आधार प्रदान किया। इन प्रयोगों के बारे में जानने से पहले, आइए ऑटोमिमिक्री के एक अन्य प्रकार पर दृष्टि डालें, जिसका वर्णन लिंकन ब्राउर के जन्म से कई वर्ष पहले ही एक अन्य प्रतिभाशाली शोधकर्ता ने किया था।

सर एडवर्ड बी. पोल्टन (1856-1943)

वैसे, इनके शोध का सम्बन्ध बेट्सियन और म्यूलेरियन अनुकरण पर किए गए अध्ययनों से भी जुड़ा हुआ है। अनुकरण के इन प्रकारों की चर्चा करते समय हमने सह-अस्तित्व (sympatry) और आवृत्ति-निर्भर चयन (frequency-dependent selection) जैसी अवधारणाओं का उल्लेख किया था। इन महत्वपूर्ण अवधारणाओं को प्रतिपादित करने का श्रेय ब्रिटिश जीवविज्ञानी एडवर्ड बैगनॉल पोल्टन (Edward Bagnall Poulton) को जाता है।

सन् 1890 में पोल्टन ने अनुकरण के एक ऐसे प्रकार का वर्णन किया, जो ऑटोमिमिक्री की अवधारणा से निकटता से जुड़ा हुआ प्रतीत होता है। इस प्रकार के अनुकरण में किसी प्रजाति के शरीर का अपेक्षाकृत कम संवेदनशील भाग, जैसे कि पूँछ, अधिक संवेदनशील भाग, जैसे कि सिर, का आभास कराता है। उदाहरण के लिए, कुछ प्रजातियों के शरीर पर आँखों जैसे धब्बे (eyespots) पाए जाते हैं, जबकि कुछ में शरीर के पिछले भाग पर सिर जैसा आकार विकसित हो जाता है, जिसे 'नकली सिर' कहा जाता है। यदि शिकारी का हमला वास्तविक सिर की बजाय इस नकली सिर पर होता है, तो जीव को कुछ क्षति ज़रूर पहुँच सकती है, लेकिन उसके जीवित बच निकलने की सम्भावना काफी बढ़ जाती है। इस प्रकार का अनुकरण मछलियों, साँपों और तितलियों सहित अनेक प्राणियों में देखा जाता है।

कुछ विशेष उदाहरण

भारत में लाइकेनिडी (Lycaenidae) कुल की अनेक छोटी तितलियाँ पाई जाती हैं। इस कुल की अधिकांश तितलियाँ हानिरहित होती हैं। इनके शरीर में किसी प्रकार के अखाद्य या विषैले रसायन नहीं होते, इसलिए पक्षी जैसे शिकारी इन्हें आसानी-से

अपना शिकार बना लेते हैं। मैंने स्वयं एशियन ग्रीन बी-ईटर जैसे पक्षियों को लाइकेनिडी कुल की तितलियों का शिकार करते हुए देखा है।

पीकॉक रॉयल

इसी कुल की एक और आकर्षक और हानिरहित तितली है पीकॉक रॉयल। इसके पिछले पंखों पर, सिर की विपरीत दिशा में, काले रंग का आँख जैसा धब्बा पाया जाता है। इसके अतिरिक्त, पिछले पंखों के सिरों पर धागे जैसी पतली पूँछनुमा संरचनाएँ (filamentous tails/ hairstreaks) होती हैं, जो देखने में तितली के एंटीना जैसी प्रतीत होती हैं। विशेष बात यह है कि यह तितली इन पूँछनुमा संरचनाओं को अपने वास्तविक एंटीना की भाँति लगातार हिलाती-डुलाती रहती है। परिणाम-स्वरूप, शिकारी को भ्रम हो सकता है कि तितली का सिर शरीर के उस पिछले भाग पर स्थित है।

पंखों पर बना आँख जैसा धब्बा और एंटीना जैसी हिलती हुई संरचनाएँ मिलकर उस भाग पर एक नकली सिर का आभास उत्पन्न करती हैं। परिणामस्वरूप, शिकारी का हमला तितली के वास्तविक सिर की बजाय उसके पंखों पर स्थित इस नकली सिर की ओर निर्देशित हो सकता है। ऐसी स्थिति में, तितली के उड़कर बच निकलने पर अक्सर उसके पंख का केवल एक छोटा-सा हिस्सा ही शिकारी के मुँह में रह जाता है। यद्यपि इस दौरान पंखों को कुछ क्षति पहुँचती है, फिर भी तितली की जान बच जाती है। यही कारण है कि ऐसी तितलियों के पंख प्रायः फटे या कटे हुए दिखाई देते हैं। यह तथ्य इस प्रकार की ऑटोमिमिक्री की प्रभावशीलता और उसके अनुकूलनात्मक (adaptive) महत्व को स्पष्ट करता है।

चित्र-2: *पीकॉक रॉयल तितली। सिर किस तरफ?!*

फोटो - संकेत राउत

चित्र-3: *पीकॉक रॉयल तितली के पिछले हिस्से के कटे हुए पंख।*

फोरआई बटरफ्लाई फिश

फोरआई बटरफ्लाई फिश (foureye butterfly fish) भी इस प्रकार की ऑटोमिमिक्री का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। इस मछली की पूँछ के आधार पर बड़े-बड़े आँख जैसे धब्बे होते हैं। इसके अतिरिक्त, इसके शरीर का आकार भी ऐसा होता है कि पहली नज़र में सिर और पूँछ वाले दोनों सिरे काफी हद तक एक-जैसे दिखाई देते हैं। खतरा महसूस होने पर यह मछली धीरे-धीरे पीछे की ओर तैरती है, जिससे शिकारी के लिए पूँछ को सिर समझने की सम्भावना और बढ़ जाती है। यदि शिकारी वास्तविक सिर की बजाय पूँछ पर हमला करता है, तो मछली को तुरन्त छिटककर बच निकलने का अवसर मिल जाता है।

इस तरह फोरआई बटरफ्लाई फिश शिकारी को कम-से-कम दो तरीकों से भ्रमित करती है। पहला, वह वास्तविक सिर के स्थान पर पूँछ की ओर हमला करवाती है। दूसरा, वह अपनी तैरने की दिशा के बारे में भी शिकारी को गलत संकेत देती है। इतना ही नहीं, इस मछली में वास्तविक आँख को कम स्पष्ट दिखाने की भी एक व्यवस्था होती है। इसके सिर पर एक गहरी ऊर्ध्वाधर काली पट्टी होती है, जो वास्तविक आँख के ऊपर से गुज़रती है और उसे आंशिक रूप से छिपा देती है। माना जाता है कि इससे शिकारी के लिए वास्तविक आँख की पहचान करना और कठिन हो जाता है। हालाँकि, इस अन्तिम परिकल्पना के समर्थन में उपलब्ध वैज्ञानिक प्रमाण अभी निर्णायक नहीं हैं, इसलिए इस विषय पर शोध अभी भी जारी है।

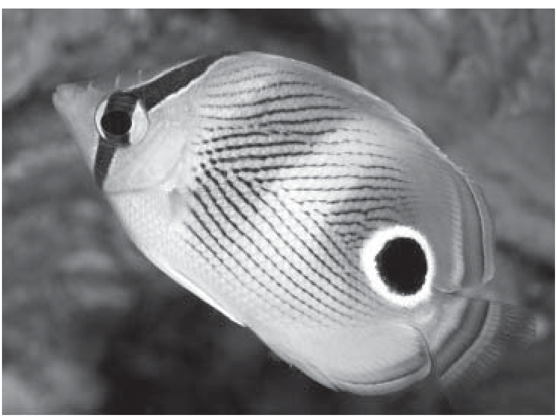

चित्र-4: फोरआई बटरफ्लाई फिश। कौन-सी आँख असली?!

नकली चेहरे वाला उल्लू

भारत के पहाड़ी वनों में एक छोटा-सा उल्लू पाया जाता है, कॉलर्ड आउलेट *(Glaucidium brodiei)*। यह उल्लू मुख्यतः छोटे जीवों का शिकार करके अपना जीवन-निर्वाह करता है। लेकिन आकार में छोटा होने के कारण यह स्वयं भी बड़े शिकारी पक्षियों और अन्य परभक्षियों का

शिकार बन सकता है। ऐसे खतरों से बचने के लिए इसमें एक अद्भुत रक्षात्मक युक्ति विकसित हुई है।

कॉलर्ड आउलेट की गर्दन के पीछे, अर्थात् नेप पर, काले और सफेद धब्बों (ocelli) से बना एक नकली चेहरा दिखाई देता है। यह पैटर्न ऐसा प्रतीत होता है मानो उल्लू अपनी आँखें खोलकर पीछे की ओर देख रहा हो। जब यह किसी डाल पर बैठकर आगे की ओर देख रहा होता है, तब पीछे से आने वाले शिकारी को भ्रम हो सकता है कि उल्लू पहले से ही उस पर नज़र रखे हुए है। इस कारण शिकारी अक्सर हमला करने से हिचकिचाता है। साथ ही, ये बड़े और स्पष्ट धब्बे किसी अपेक्षाकृत बड़े जीव का आभास भी करा सकते हैं, जिससे शिकारी उसका पीछा छोड़ सकता है।

शिकार का पीछा करके उसे पकड़ने में शिकारी को पर्याप्त ऊर्जा व्यय करनी पड़ती है। इसलिए अधिकांश शिकारी प्रजातियाँ ऐसे शिकार को प्राथमिकता देती हैं, जिसे कम-से-कम ऊर्जा खर्च करके पकड़ा जा सके। यदि लक्षित भक्ष्य पहले से ही शिकारी को देख रहा हो, तो हमला होते ही उसके बच निकलने की सम्भावना बढ़ जाती है। ऐसी असफल कोशिश शिकारी के लिए केवल ऊर्जा की हानि सिद्ध होती है। यही कारण है कि शिकारी प्रायः ऐसे भक्ष्य की तलाश करते हैं, जो असावधान हो और उन्हें आते हुए न देख पाए। इस प्रकार, कॉलर्ड आउलेट ऑटोमिमिक्री का एक उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है, जिसमें जीव अपने ही शरीर के एक भाग का उपयोग दूसरे भाग (सिर और चेहरे)

चित्र-5: कॉलर्ड आउलेट का सामने से चेहरा और गर्दन का पिछला हिस्सा।

का आभास उत्पन्न करने के लिए करता है।

कनखजूरा

कनखजूरे (centipede) में भी ऑटोमिमिक्री का एक रोचक उदाहरण देखने को मिलता है। इसके शरीर के दोनों सिरे पहली दृष्टि में सिर जैसे प्रतीत हो सकते हैं, यद्यपि इनमें से केवल एक ही वास्तविक सिर होता है। कनखजूरे का शरीर अनेक खण्डों से बना होता है और उसका अन्तिम शरीर-खण्ड आकार एवं रंग के कारण सिर जैसा दिखाई देता है। इसके अतिरिक्त, अन्तिम पैरों की जोड़ी भी लम्बी और एंटीना जैसी प्रतीत होती है। परिणामस्वरूप, वास्तविक सिर, जिसमें विषैले फॉर्सीप्यूल्स (forcipules) होते हैं, और शरीर के पिछले सिरे के बीच अन्तर कर पाना शिकारियों के लिए कठिन हो जाता है। यदि शिकारी नकली सिर की दिशा में हमला करता है, तो प्रायः शरीर का पिछला भाग ही क्षतिग्रस्त होता है, जिससे कनखजूरे के बच निकलने की सम्भावना बढ़ जाती है। मैंने स्वयं मुर्गियों और अन्य पक्षियों को कनखजूरों पर हमला करते और उन्हें खाते हुए देखा है।

अपने अनुभव के आधार पर मैं कह सकता हूँ कि कनखजूरे का डंक या विषदंश अत्यन्त दर्दनाक होता है। यदि कोई शिकारी नकली सिर के भ्रम में आकर उसे शरीर के पिछले सिरे से पकड़ ले, तो कनखजूरा तुरन्त अपना शरीर मोड़कर अपने विषैले फॉर्सीप्यूल्स से उस पर प्रहार करता है। इस अप्रत्याशित विषदंश से शिकारी क्षणभर के लिए कनखजूरे को छोड़ सकता है या पीछे हट सकता है। यही अवसर कनखजूरे को वहाँ से तेज़ी-से भाग निकलने का मौका प्रदान करता है।

शील्ड-टेल्ड साँप

शील्ड-टेल्ड साँप पश्चिमी घाट की एक स्थानिक प्रजाति है। अर्थात्, यह समूह प्राकृतिक रूप से केवल भारत के पश्चिमी घाट में ही पाया जाता है और संसार के किसी अन्य भाग में नहीं मिलता। इस समूह की एक प्रजाति मुम्बई और पुणे के बीच स्थित लोणावला क्षेत्र में अपेक्षाकृत अधिक संख्या में पाई जाती है।

जब शील्ड-टेल्ड साँपों पर हमला होता है, तो वे अपना

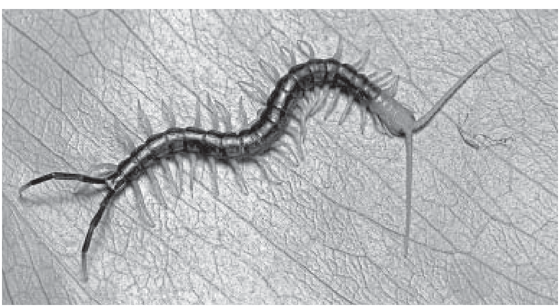

चित्र-6: कनखजूरा। पहचानिए, सिर किस ओर है?!

चित्र-7: शील्ड-टेल्ड साँप। है न मुश्किल, सिर और पूँछ पहचानना?!

वास्तविक सिर शरीर की कुण्डलियों के बीच सुरक्षित छिपा लेते हैं और अपनी ढाल जैसी पूँछ को ऊपर उठाकर हिलाने लगते हैं। इससे शिकारी को भ्रम हो सकता है कि वही साँप का सिर है, और वह उसी पर हमला कर बैठता है। पूँछ पर हुआ हमला वास्तविक सिर पर हुए हमले की तुलना में साँप के लिए कहीं कम घातक होता है। इस प्रकार, शरीर के पिछले सिरे को नकली सिर के रूप में प्रस्तुत करने की यह युक्ति शील्ड-टेल्ड साँपों के जीवित बच निकलने की सम्भावना को बढ़ा देती है।

ऑटोमिमिक्री के फायदे

शिकारी का हमला शरीर के कम संवेदनशील भाग की ओर मोड़ देने वाली ऐसी विशेषताओं को प्राकृतिक चयन सहज रूप से प्रोत्साहित करता है। जिन जीवों में ऐसी प्रभावी युक्ति नहीं होती, उनके शिकारियों का शिकार बनने की सम्भावना अधिक रहती है। इसके विपरीत, 'फॉल्स हेड' जैसी युक्ति रखने वाले जीव अधिक बार हमले से बच निकलते हैं और उन्हें जीवित रहकर प्रजनन करने का बेहतर अवसर मिलता है। परिणाम-स्वरूप, ऐसे लक्षण अगली पीढ़ियों में अधिक बार स्थानान्तरित होते जाते हैं। इसी प्रकार प्राकृतिक चयन के माध्यम से यह अनुकूलन विकसित और सुदृढ़ होता है। इसलिए ऑटोमिमिक्री को शिकारियों से रक्षा करने वाली एक महत्वपूर्ण विकासवादी युक्ति माना जाता है।

मोनार्क तितली व ब्रोवर का प्रयोग

ऑटोमिमिक्री में मोनार्क तितली का उदाहरण उपर्युक्त सभी उदाहरणों से भिन्न है। अन्य उदाहरणों में जीव

अपने शरीर के किसी एक भाग को दूसरे भाग जैसा प्रदर्शित करके शिकारियों को भ्रमित करता है, जबकि मोनार्क तितली के मामले में अनुकरण शरीर के किसी अंग का नहीं होता। यहाँ अनुकरण एक ही प्रजाति के सदस्यों के बीच होता है। इस प्रजाति के कुछ सदस्य अत्यधिक विषैले और अखाद्य होते हैं, जबकि कुछ में विष की मात्रा कम होने के कारण वे अपेक्षाकृत स्वादिष्ट होते हैं। फिर भी सभी सदस्यों का रंग-रूप लगभग एक-जैसा होने के कारण अपेक्षाकृत स्वादिष्ट सदस्य भी अधिक विषैले और अखाद्य सदस्यों की चेतावनीपूर्ण रंगत (warning coloration) का लाभ उठाकर शिकारियों से सुरक्षा प्राप्त कर लेते हैं। यही विशेषता मोनार्क तितली की ऑटोमिमिक्री को अन्य सभी उदाहरणों से अलग बनाती है।

इस अनुकरण के सफलतापूर्वक बने रहने के लिए कुल आबादी में अखाद्य तितलियों की संख्या हानिरहित तितलियों की अपेक्षा अधिक होनी चाहिए। ऐसा इसलिए ज़रूरी है क्योंकि यदि शिकारी के अधिकांश हमले अखाद्य तितलियों पर होंगे, तो वह उनके अप्रिय स्वाद या विषाक्तता के कारण आगे चलकर समान दिखने वाली हानिरहित तितलियों से भी कन्नी काटने लगेगा। इसके विपरीत, यदि हानिरहित तितलियों की संख्या अधिक होगी, तो शिकारी अधिकतर स्वादिष्ट तितलियाँ ही खाएगा और कभी-कभार किसी अखाद्य तितली को खाकर भी अपने अनुभव से इस समानता को अनदेखा कर सकता है। ऐसी स्थिति में अनुकरण का लाभ समाप्त हो जाएगा और हानिरहित तितलियों की प्रजाति के अस्तित्व पर भी संकट उत्पन्न हो सकता है।

इस सन्दर्भ में ब्राउर ने एक रोचक प्रयोग किया। उन्होंने कुछ मोनार्क तितलियों को इल्ली अवस्था से ही गोभी के पत्तों पर पाला। ब्लू जे एक कीटभक्षी पक्षी है, जिसके आहार में तितलियाँ भी शामिल होती हैं। ब्राउर ने इन पक्षियों को गोभी के पत्तों पर पली हुई मोनार्क तितलियाँ खिलाने का प्रयास किया। सामान्यतः इन तितलियों को ब्लू जे पक्षी आसानी-से खा सकते थे, क्योंकि इनमें मिल्कवीड से प्राप्त विषैले रसायन नहीं थे। लेकिन जिन ब्लू जे पक्षियों ने पहले मिल्कवीड पर पली हुई अखाद्य मोनार्क तितलियाँ खाई थीं, वे बाद में गोभी के पत्तों पर पली हुई इन स्वादिष्ट मोनार्क तितलियों को भी खाने से बचते रहे। ब्राउर ने अपने प्रयोग में इस व्यवहार का स्पष्ट रूप से उल्लेख किया।

मोनार्क तितली में ऑटोमिमिक्री का अध्ययन करते समय एक महत्वपूर्ण प्रश्न सामने आता है। जब सभी तितलियों के पास विषैले रसायन प्राप्त कर अखाद्य बनने का अवसर

होता है, तब कुछ तितलियाँ इस अवसर का उपयोग क्यों नहीं करतीं? वे स्वयं को उपलब्ध इस सुरक्षा कवच से वंचित क्यों रखती हैं? पहली दृष्टि में यह व्यवहार अविवेकपूर्ण प्रतीत हो सकता है। यदि शिकारी पर्याप्त अनुभवी या चतुर हो, तो वह मोनार्क तितलियों पर बार-बार हमला कर सकता है, क्योंकि उसे ज्ञात होगा कि उनमें से कुछ तितलियाँ स्वादिष्ट और खाने योग्य भी हैं। यदि उसके हाथ कोई अखाद्य तितली लग भी जाए, तो वह उसे अप्रिय स्वाद के कारण थूक सकता है और अगली तितली का परीक्षण कर सकता है। ऐसी स्थिति में अखाद्य तितलियाँ भी जोखिम में पड़ जाएँगी, क्योंकि खाने योग्य और अखाद्य तितलियों में भेद करने का एकमात्र उपाय प्रत्येक तितली को पकड़कर, उसका स्वाद लेना होगा। यदि वास्तव में ऐसा होता, तो ऑटोमिमिक्री से मिलने वाला सुरक्षात्मक लाभ समाप्त हो जाता। लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि इन सभी सम्भावित कठिनाइयों के बावजूद यह ऑटोमिमिक्री प्रकृति में आज भी बनी हुई है। आखिर ऐसा क्यों है?

खतरा तो बना रहता है

इसका एक सम्भावित स्पष्टीकरण यह है कि इस प्रकार की ऑटोमिमिक्री शिकारियों को तितलियों पर हमला करने से पूरी तरह नहीं रोकती, बल्कि उन्हें सावधानीपूर्वक निर्णय लेने के लिए प्रेरित करती है। दूसरे शब्दों में, कुछ शिकारी इन तितलियों पर पहले हमला करके यह परखते हैं कि वे खाने योग्य हैं या नहीं। यदि तितली अखाद्य निकलती है, तो वे उसे अप्रिय स्वाद के कारण थूक देते हैं, वहीं यदि वह हानिरहित व खाने योग्य होती है, तो उसे खा लेते हैं।

अनुकरण करने वाले जीवों पर शिकारियों द्वारा हमले होने की पुष्टि विभिन्न प्रयोगों से हुई है। उदाहरण के लिए, बेट्सियन अनुकरण के सन्दर्भ में एक प्रयोग में विषहीन स्कार्लेट किंगस्नेक, जो विषैले ईस्टर्न कोरल स्नेक की नकल करता है, की कृत्रिम प्रतिकृतियों पर शिकारियों के हमलों का अवलोकन किया गया था। इससे स्पष्ट होता है कि किसी खतरनाक या विषैली प्रजाति जैसा विशिष्ट रंग-रूप धारण कर लेने मात्र से सभी शिकारी हमले करना बन्द नहीं कर देते। अनेक शिकारी पहले सम्भावित शिकार की जाँच या परीक्षण करते हैं और उसके बाद ही यह निर्णय लेते हैं कि उसे खाया जाए या छोड़ दिया जाए।

इसलिए यदि अनुकरण करने वाली हानिरहित तितलियों में अगर चन्द ही शिकारी के हमलों से बच पाती हों, तो ऊर्जा की बचत के कारण उनका प्रजनन भले ही अपेक्षाकृत अधिक हो, फिर भी उनकी आबादी का अनुपात बहुत अधिक

नहीं बढ़ पाएगा। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि किसी आबादी में अनुकरण करने वाले जीवों की संख्या सामान्यतः सीमित ही क्यों रहती है। लेकिन इससे एक और महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है। यदि अनुकरण करने वाले इतने अधिक जीव अन्ततः शिकारियों के हमलों का सामना करने वाले हैं, तो उनमें ऐसी रणनीति क्यों विकसित हुई, जो उन्हें शिकारियों का ध्यान आकर्षित करने वाले रंग-रूप से जोड़ देती है? दूसरे शब्दों में, शिकारी की दृष्टि में अधिक स्पष्ट दिखाई देने का जोखिम उठाकर भी अनुकरण उनके लिए लाभकारी कैसे सिद्ध हुआ? ग्रेम डी. रक्सटन और माइकल पी. स्पीड ने गणितीय मॉडल्स के आधार पर ऑटोमिमिक्री के साथ जुड़े ऐसे कुछ सवालों की गुत्थी सुलझाने में अहम योगदान दिया।

ऊर्जा का गणित

इसे समझने के लिए हमें एक बार फिर ऊर्जा के गणित पर ध्यान देना होगा। शिकारी जब शिकार पकड़ता है, तो उसमें उसकी ऊर्जा भी खर्च होती है और कुछ समय भी जाता है। यदि उसके हाथ कोई अखाद्य तितली लगती है, तो उसे न केवल उसे पकड़ने में ऊर्जा खर्च करनी पड़ती है, बल्कि अन्ततः उसे छोड़ देना पड़ता है। अर्थात् उस प्रयास में लगाया गया समय और ऊर्जा, दोनों व्यर्थ चले जाते हैं। शिकारी इस प्रकार की हानि तभी तक सहन करेगा, जब तक उसे कुछ निश्चित मात्रा में हानिरहित तितलियाँ खाने को मिलती रहें। इसलिए हानिरहित और अखाद्य तितलियों के बीच एक सन्तुलित अनुपात बना रहना आवश्यक है। इसी सन्तुलन के कारण ऑटोमिमिक्री की यह व्यवस्था बनी रह सकती है और मोनार्क तितलियों की आबादी भी दीर्घकाल तक अपने अस्तित्व और वंश की निरन्तरता बनाए रख सकती है।

गणितीय मॉडलों के आधार पर इसे इस प्रकार समझा जा सकता है। यदि किसी आबादी में हानिरहित मोनार्क तितलियों का अनुपात बढ़ने लगे, तो उन पर शिकारियों के हमलों की सम्भावना भी बढ़ जाएगी। परिणामस्वरूप, शिकारी इन तितलियों में तब तक रुचि बनाए रखेगा, जब तक हानिरहित और अखाद्य तितलियों का अनुपात उस इष्टतम (optimal) स्तर तक वापस न पहुँच जाए, जहाँ उन्हें पकड़ने से मिलने वाला लाभ अपेक्षाकृत कम हो जाता है। इस प्रकार प्राकृतिक चयन दोनों प्रकार की तितलियों के अनुपात को एक निश्चित 'क्रिटिकल वैल्यू' के आसपास बनाए रखने की प्रवृत्ति दिखाता है। यही सन्तुलन ऑटोमिमिक्री को लम्बे समय तक स्थिर बनाए रखता है और हानिरहित तितलियों को भी, विषैले रसायनों के

अभाव के बावजूद, पर्याप्त सुरक्षा प्रदान करता है। दूसरे शब्दों में, किसी मोनार्क तितली पर हमला करना है या नहीं, यह निर्णय मुख्यतः इस बात पर निर्भर करता है कि उस हमले से शिकारी को मिलने वाला सम्भावित लाभ उसकी ऊर्जा, समय और जोखिम की तुलना में कितना अधिक है।

यहाँ एक और महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है। अखाद्य बनने के लिए भी तितलियों को ऊर्जा का निवेश करना पड़ता है। हानिरहित तितली अपेक्षाकृत अधिक प्रकार के पौधों पर अण्डे दे सकती है, जबकि अखाद्य तितली को ऐसे पौधों का चयन करना पड़ता है जिनसे उसकी इल्लियाँ विषैले रसायन प्राप्त कर सकें। साथ ही, इन रसायनों को ग्रहण करना, सहन करना और अपने शरीर में सुरक्षित रखना भी ऊर्जा तथा शारीरिक संसाधनों की माँग करता है। इसलिए यह माना जा सकता है कि अखाद्य तितलियाँ, हानिरहित तितलियों की तुलना में, उतनी तेज़ी-से अपना वंश विस्तार नहीं कर पाती होंगी। दूसरी ओर, हानिरहित तितलियाँ बिना यह अतिरिक्त लागत उठाए अखाद्य तितलियों के चेतावनी रंगों और शिकारियों के अनुभव का लाभ प्राप्त करती हैं। यदि उनकी प्रजनन दर भी अधिक हो, तो स्वाभाविक प्रश्न यह उठता है कि समय के साथ पूरी आबादी हानिरहित तितलियों में ही क्यों नहीं बदल जाती?

इसका एक सम्भावित उत्तर यह है कि जब शिकारी किसी अखाद्य तितली पर हमला करता है, तो अप्रिय स्वाद या विषैले प्रभाव का अनुभव होने पर वह प्रायः उसे छोड़ देता है। यद्यपि ऐसे हमले में तितली को कुछ क्षति पहुँच सकती है, फिर भी उनमें से कम-से-कम कुछ तितलियाँ जीवित बचकर बाद में प्रजनन करने में सफल हो जाती हैं। इसके विपरीत, हानिरहित तितलियाँ यदि शिकारियों के हाथ लग जाएँ, तो उनके बच निकलने की सम्भावना बहुत कम होती है, क्योंकि उन्हें सामान्यतः खा लिया जाता है। परिणामस्वरूप, उन्हें प्रजनन के लिए अपेक्षाकृत कम अवसर मिलते हैं। इसलिए, भले ही हानिरहित तितलियों की प्रजनन दर अधिक हो, शिकार के कारण उनकी मृत्यु-दर भी अधिक रहती है। यही सन्तुलन दोनों प्रकार की तितलियों के अनुपात को एक विशिष्ट स्तर पर बनाए रखने में सहायक हो सकता है।

लाजवाब सन्तुलन

मोनार्क तितली के उदाहरण से स्पष्ट होता है कि किसी एक ही प्रजाति में बाहरी रूप से एक-जैसे दिखाई देने वाले, लेकिन गुणों में भिन्न, कुछ अखाद्य और कुछ हानिरहित, सदस्य लम्बे समय तक

एकसाथ बने रह सकते हैं। इस सन्तुलन को बनाए रखने में प्राकृतिक चयन की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। विशेष रूप से, शिकारियों का अनुभव-आधारित व्यवहार इस व्यवस्था को स्थिर बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

मोनार्क तितलियों के सन्दर्भ में यह सम्भावना भी ध्यान में रखनी चाहिए कि अखाद्य बनने की क्षमता हर परिस्थिति में समान रूप से उपलब्ध नहीं होती। उदाहरण के लिए, जिन इल्लियों को अपने पोषक पौधों से विषैले रसायन प्राप्त होते हैं, वे आगे चलकर शिकारियों के विरुद्ध बेहतर सुरक्षा हासिल कर लेती हैं। लेकिन यदि किसी क्षेत्र में ऐसे उपयुक्त विषैले पौधों की उपलब्धता कम हो, तो मादा तितलियाँ विवश होकर अन्य पौधों पर भी अण्डे दे सकती हैं। ऐसे पौधों पर पली इल्लियों को आवश्यक विषैले रसायन प्राप्त नहीं हो पाते, परिणामस्वरूप वे वयस्क होने पर अपेक्षाकृत हानिरहित रह जाती हैं। ऐसी तितलियों को उसी प्रजाति की विषैले रसायन संचित कर अखाद्य बनी तितलियों के चेतावनी रंगों और शिकारियों के पूर्व अनुभव का लाभ मिलता है। इस प्रकार यह व्यवस्था मोनार्क तितलियों की पूरी आबादी के अस्तित्व और निरन्तरता बनाए रखने में सहायक हो सकती है।

कुल मिलाकर, यह ध्यान रखना आवश्यक है कि पर्यावरणीय परिस्थितियाँ समय और स्थान के अनुसार बदलती रहती हैं। ऐसी परिस्थितियों में कभी अधिक सुरक्षा (high defence) की रणनीति लाभकारी सिद्ध होती है, तो कभी कम सुरक्षा (low defence) की। इसलिए प्राकृतिक चयन किसी एक ही रणनीति का हमेशा समर्थन नहीं करता, बल्कि परिस्थितियों के अनुसार दोनों प्रकार की रणनीतियों के बीच सन्तुलन बनाए रख सकता है।

वास्तविकता यह है कि ऑटोमिमिक्री के विकासवादी और पारिस्थितिक महत्व को स्वीकार किए जाने के बावजूद, इस विषय पर अपेक्षाकृत कम सैद्धान्तिक अध्ययन हुए हैं। फिर भी, उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि यदि गणितीय मॉडलों में शिकारियों द्वारा शिकार पर खर्च होने वाले समय और ऊर्जा, भक्ष्य प्रजाति के भीतर उपस्थित विविधता तथा आवृत्ति-निर्भर (frequency-dependent) प्रक्रियाओं (या गुणों) को सम्मिलित किया जाए, तो पर्यावरणीय दृष्टिकोण से ऑटोमिमिक्री के दीर्घकाल तक बने रहने को गणितीय तरीके से समझाया जा सकता है।

* * *

यहाँ एक स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि क्या इस व्यवस्था को वास्तव में ‘अनुकरण’ कहा जाना चाहिए। इस प्रश्न का उत्तर देना थोड़ा कठिन है। फिर भी, इस स्थिति में हानिरहित

सदस्य अपनी ही प्रजाति के अखाद्य सदस्यों के समान चेतावनी-संकेतों का लाभ उठाकर शिकारियों को भ्रमित करते हैं। इस दृष्टि से यह व्यवस्था अनुकरण की मूल विशेषता को पूरा करती है, क्योंकि इसमें भ्रामक संकेत (deceptive signal) के माध्यम से शिकारियों के व्यवहार को प्रभावित किया जाता है। ठीक बेट्सियन अनुकरण की तरह, यहाँ भी शिकारी को हानि उठानी पड़ती है, क्योंकि वह ऐसे सदस्यों को भी छोड़ देता है जिन्हें वह वास्तव में खा सकता था। अतः इस व्यवस्था को ऑटोमिमिक्री कहना उचित प्रतीत होता है।

चूँकि ऑटोमिमिक्री का उद्देश्य भी शिकारियों से बचकर जीवित रहना है, इसलिए इसे सुरक्षात्मक अनुकरण (protective mimicry) की श्रेणी में रखा जा सकता है। फिर भी, इसकी अवधारणा और विकासवादी आधार को और अधिक स्पष्ट करने के लिए आगे व्यापक अध्ययन की आवश्यकता है।

अनुकरण के ये रोचक किस्से और उदाहरण इस विषय को और भी आकर्षक बना देते हैं। लेकिन क्या आपके मन में यह प्रश्न आया कि जीव-जगत के इतिहास में अनुकरण की शुरुआत कब हुई होगी? इसका उत्तर जानने के लिए हमें करोड़ों वर्ष पुराने जीवाश्मों की गवाही लेनी होगी। तो अनुकरण के इतिहास के बारे में जीवाश्म हमें क्या बताते हैं, और एक बिलकुल अलग प्रकार के अनुकरण से हम अगले किसी लेख में रूबरू होंगे।

संकेत राउत: वन्यजीव प्रेमी हैं तथा वन्यजीव अध्ययनों में भाग लेते रहते हैं। पक्षी और तितलियाँ रुचि के मुख्य क्षेत्र हैं। जंगली जानवरों के बारे में पढ़ने में और उनके व्यवहार का विश्लेषण करने में आनन्द आता है। शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत हैं और शिक्षक प्रशिक्षण का कार्य करते हैं।

सन्दर्भ:

https://pmc.ncbi.nlm.nih.gov/articles/PMC1560041/

https://en.wikipedia.org/wiki/Automimicry#cite_note-Robbins-12

https://www.researchgate.net/publication/17938393_Plant_poisons_in_a_terrestrial_food_chain

ख्वारिज़्मी और उनका अलज़ाब्र

आमोद कारखानीस

बचपन में कहानियों की किताबें पढ़ना एक अत्यन्त रुचिकर शगल होता था। उसमें भी यदि किताब रहस्य-रोमांच की हो तब तो उत्साह बेहिसाब हो जाता था! ऐसी किताबों में एक किताब जो सदैव रोमांचित करती थी, वो थी - *अरेबियन नाइट्स*। उसमें रोमांचित करने वाली कहानियाँ और खलीफा हारुन अल-रशीद द्वारा भेष बदलकर अपनी रियासत में घूमना बेहद मज़ेदार लगता था। *अरेबियन नाइट्स* की कहानियाँ काल्पनिक होने के बाद भी उसका एक प्रमुख किरदार, हारुन अल-रशीद सचमुच में बगदाद का खलीफा हुआ करता था। सन् 700-800 के बीच वो बगदाद का शासक था। अभी हम जिस किस्से को बयान करने वाले हैं, वह कहानी भी उसी कालखण्ड में बगदाद में घटित हुई थी।

वह दौर अरब साम्राज्य का स्वर्णकाल था, जब अरब साम्राज्य पूरब में सिन्ध से लेकर पश्चिम में यूरोप तक फैला हुआ था। खलीफा हारुन अल-रशीद और उनके बाद के शासक क्षमतावान और दूरदृष्टि रखने वाले थे। उस दौरान बगदाद को कला, विज्ञान, संस्कृति और साहित्य के क्षेत्र में दुनिया का प्रमुख केन्द्र बनाने के प्रयास शुरू हो गए थे। इसके लिए भारत, इजिप्त, ग्रीस, रोम आदि के अनेक ग्रन्थों के फारसी भाषा में अनुवाद को प्रोत्साहित किया गया। अलग-अलग देशों के विद्वान बगदाद में आकर रहने लगे थे और शोध एवं अध्ययन-अध्यापन जैसे काम करने लगे थे। ऐसे विद्वानों में एक नाम अल-ख्वारिज़्मी का भी था। ऐसा अनुमान है कि ख्वारिज़्मी की पैदाइश वर्तमान उज़्बेकिस्तान में हुई थी। उसका पूरा नाम मुहम्मद इबन मूसा अल-ख्वारिज़्मी था। उसकी शौहरत के किस्से सुनकर खलीफा ने उसे बगदाद आमंत्रित किया था। ख्वारिज़्मी बगदाद आए और कुछ ही समय में वहाँ रम गए। सन् 850 के आसपास वे खलीफा हारुन अल-रशीद द्वारा स्थापित 'हाउस ऑफ विज़्डम' के संचालक भी बने थे।

कला और ज्ञान का केन्द्र

चलिए, उस दौर के बगदाद में चलते हैं। गुम्बदों वाली छतों से सजी हुई बहुरंगी इमारतें, भीड-भाड़ वाले बाज़ार, चीन, भारत, यूरोप और इजिप्त जैसे कई देशों से आने वाली सामग्री, अनाज, फल, हीरे और इनकी

खरीद-फरोख्त – ऐसा सम्पन्न था बगदाद।

सिर्फ व्यापार ही नहीं, कलाकारों के लिए भी बगदाद के दरवाज़े हमेशा खुले रहते थे। उस समय बगदाद में रेखागणितीय आकारों पर आधारित टाइल्स काफी मशहूर हो चली थीं। कला की तरह ही वहाँ ज्ञान को भी काफी सम्मान प्राप्त था। इसलिए हर महीने किसी तयशुदा दिन विद्वानों की सभा का आयोजन भी होता था, जिसमें अलग-अलग विषयों पर नए विचार एवं नए ग्रन्थ सबके सामने प्रस्तुत किए जाते थे।

भारत से आया ज्ञान का सन्देश

उस दिन भी सभा में ऐसा ही कुछ घटा था। भारत से आए हुए कनक नामक खगोलविद् ने ब्रह्मगुप्त का कण्ठस्थ किया हुआ ग्रन्थ सबको सुना दिया। उस सभा में ख्वारिज़्मी भी मौजूद था। ग्रन्थ का पाठ सुनकर उनकी आँखें खुल-सी गईं। वो बाएँ हाथ से अपनी दाढ़ी पर हाथ फेरने लगे। यह उनकी आदत भी थी, जब कभी वे गम्भीरतापूर्वक सोचने लगते तो हाथ खुद-ब-खुद दाढ़ी पर चला जाता था। ऐसे ही एक दिन खलीफा ने उनसे पूछा था कि दुनियाभर के

मुसलमानों को रेगिस्तान या समुन्दर में सफर के दौरान नमाज़ पढ़ने के लिए मक्का की वास्तविक दिशा मालूम करनी हो तो वे कैसे पता करेंगे, इसके लिए कोई तरीका बताओ। तब भी ख्वारिज़्मी ने ऐसे ही दाढ़ी पर हाथ फेरना शुरू कर दिया था। हालाँकि, उन्होंने और उनके शागिर्दों ने मिलकर पूरे अरब साम्राज्य के अलग-अलग इलाकों के लिए, अलग-अलग समय आसमान में दिख रहे तारा समूहों के नक्शे बनाए थे। इसके लिए सारी गणितीय संक्रियाएँ एवं जटिल गणनाएँ, सारा कुछ ख्वारिज़्मी ने खुद भी ध्यान देकर किया था।

अभी-अभी कनक ने ब्रह्मगुप्त का जो ग्रन्थ सुनाया, उसे सुनकर वे खासे प्रभावित हो गए थे। यह स्पष्ट था कि भारतीय अंक, अंक लेखन का तरीका, भिन्न के नियम, बीज गणित, त्रिकोणमिति आदि – इन सभी क्षेत्रों में भारतीय काफी आगे थे। इस ग्रन्थ का केवल अनुवाद करके काम नहीं चलने वाला। इस ग्रन्थ को सरल भाषा में समझाकर बताना चाहिए और इसे सभी तक पहुँचाना होगा, ख्वारिज़्मी ऐसा सोचने लगे थे।

इस सोच को आगे बढ़ाते हुए उन्होंने *अल-जन वाल तफरीक बी हिसाब अल-हिन्द* यानी *भारत के गणित में जोड़ना और घटाना* ग्रन्थ की रचना की। बाद में, इसका लेटिन भाषा में *Algorithm de numero indoram* शीर्षक से अनुवाद किया गया। इस ग्रन्थ में भारतीय अंक पद्धति का इस्तेमाल करते हुए जोड़ना, घटाना, गुणा और भाग कैसे किए जा सकते हैं, इसके

विविध तरीके दिए गए हैं। इसी तरीके से गणित को पायदान-दर-पायदान (स्टेप-बाई-स्टेप) बताने के लिए एल्गोरिदम शब्द प्रचलन में आया। वर्तमान समय में कम्प्यूटर एल्गोरिदम भी उसी का एक रूप है। इस किताब की वजह से भारतीय अंक और अन्य गणितीय अवधारणाओं का यूरोप में फैलाव हुआ।

रस्सी से नपाई वाले - सर्वेयर

बीज-गणित ख्वारिज़्मी का पसन्दीदा विषय था। विशेषकर अज्ञात राशियों वाले कूटप्रश्न (अर्थात् आज के बीजगणितीय समीकरण) उनका सबसे प्रिय विषय थे। एक दफा वे अपने शागिर्दों को बता रहे थे कि ये द्विघात समीकरणों वाले सवाल सिर्फ गणितज्ञों की समस्या के समाधान के लिए ही नहीं हैं, इनका इन्सानी ज़िन्दगी में भी उतना ही इस्तेमाल है। वे आगे बताते हैं कि मैंने प्राचीन मिस्त्र के कुछ ग्रन्थ पढ़े हैं। उस समय वहाँ के राजा नील नदी के उपजाऊ इलाकों के एकसमान चौकोन भूखण्ड लोगों को खेती करने के लिए देते थे। परन्तु भूखण्ड की सीमा निर्धारित करने वाले खम्बे हर साल बाढ़ में नष्ट हो जाते थे। राजा के सर्वेयर जिन्हें उस दौर में 'रस्सी से नपाई वाले' (Harpendonapati) कहा जाता था, हर साल दोबारा ज़मीन की नापजोख करके उपजाऊ ज़मीन का फिर से बँटवारा कर देते थे। इन सर्वेयर को उस समय बहुत इज़्ज़त दी जाती थी। उनको इतनी इज़्ज़त मिलना वाजिब भी था क्योंकि ये लोग गणित में माहिर थे। उन्हें ऐसे द्विघात समीकरण हमेशा ही हल करने पड़ते थे। उदाहरण के लिए मान लीजिए – किसी एक किसान को पिछले भूखण्ड रिकॉर्ड के मुताबिक 96 खेत (एक इकाई) भूखण्ड देना है। इसमें से उसे एक वर्गाकार टुकड़ा और इस वर्ग से सटा हुआ 12 इकाई का टुकड़ा घर के लिए देना है। तो पता करना है कि वर्ग की भुजा क्या होगी।

आज की गणितीय भाषा में यदि उस वर्ग की भुजा X है तो, $X^2 + 12X = 96$, यह समीकरण बनेगा जिसे हल करना है।

उस समय इजिप्त में इसे हल करने के लिए एक तरीका उपलब्ध था। लेकिन ब्रह्मगुप्त के ग्रन्थ में ऐसे सवालों को हल करने के लिए कई तरीके बताए गए थे। बाद में ख्वारिज़्मी ने इन सबका अध्ययन करके द्विघात समीकरणों को छह किस्मों में रखा और हरेक को हल करने के तरीके बताए। साथ ही, उन्हें रेखागणितीय आकृतियों में तब्दील करने और विज़ुअल स्वरूप देने की कोशिश की। इसे एक उदाहरण से समझते हैं।

एक समीकरण है,

$$X^2 + 10X + 21 = 0$$

चित्र-1 में मान लीजिए, $AB = X$ है तो ABCD वर्ग का क्षेत्रफल X^2 हुआ।

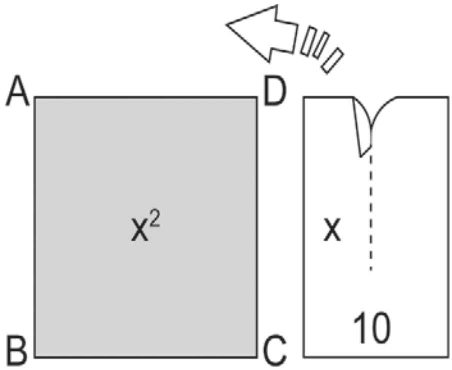

चित्र-1

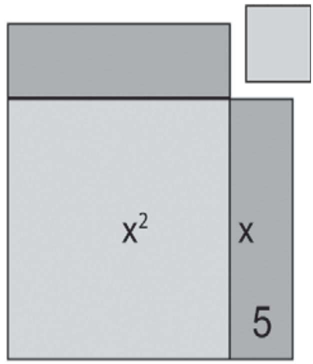

चित्र-2

ख्वारिज़्मी बताते हैं कि अगले पद यानी 10X के दो हिस्से किए मतलब 5X + 5X और इससे हमें 5 एवं X लम्बाई-चौड़ाई वाले दो आयत मिले। इन्हें वर्ग की दो भुजाओं से सटाते हैं। इस तरह चित्र में दिखाए मुताबिक रचना प्राप्त हो गई है। चित्र-2 में (X+5 लम्बाई-चौड़ाई वाला) वर्ग पूरा करने के लिए 5 x 5 = 25 आकार का चौकोन और जोड़ना पड़ेगा। यदि समीकरण के तीसरे पद 21 में से 25 को निकाल दें तो (-4) बचेगा। 4 का वर्गमूल निकाला जाए तो हमारा समीकरण होगा,

$(X+5)^2 - 2^2 = 0$

$a^2-b^2 = (a+b) \times (a-b)$, इस समीकरण को हल करना हमारे लिए अब सम्भव हो गया है।

हमारी पाठ्यपुस्तकों में द्विघात समीकरणों को हल करने के तरीकों में यह तरीका भी शामिल रहता है। इसे हम वर्ग पूरा करने का तरीका कहते हैं।

बाज़ार का एक दिलचस्प अनुभव

ख्वारिज़्मी के दौर में अज्ञात मान के लिए किसी अक्षर को रखकर गणनाएँ करने का तरीका विकसित नहीं हुआ था। इसलिए ऐसे अज्ञात मान को मालूम करने का तरीका लम्बा और जटिल हो जाता था। उन्होंने वर्गीकरण की जो कोशिश की, उसकी वजह से थोड़ी सुगमता तो मिली, फिर भी बहुत-सी अन्य दिक्कतें तो बची ही थीं।

एक दिन, हमेशा की तरह ख्वारिज़्मी अपने शागिर्दों के साथ बैठे थे। उनके पास एक थैली भी थी जिसमें अरब के उम्दा खजूर थे। उन्होंने जोश-जोश में बताया कि “आज तो मज़ेदार वाकिया हुआ। मैं बाज़ार में खजूर खरीदने के लिए

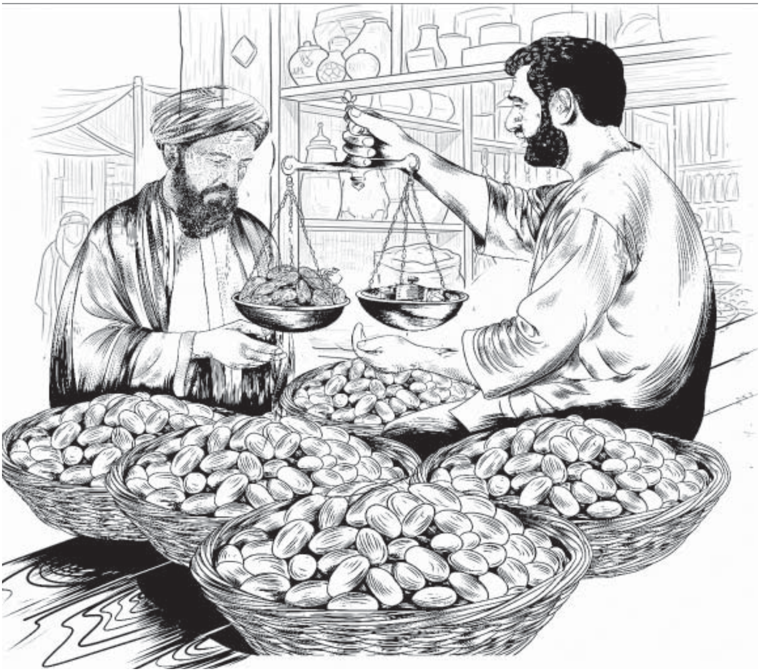

गया था। मुझे जितना खजूर चाहिए था, उस वज़न का बाँट दुकानदार के पास नहीं था। उसके पास थोड़ा ज़्यादा वज़न का बाँट था। अब जितना खजूर चाहिए, उतना किस तरह तौला जाए? इसके समाधान के लिए हमने जहाँ खजूर रखे थे, तराज़ू के उस पलड़े में भी एक कम वज़न का बाँट रखा ताकि दोनों पलड़े सन्तुलित हो जाएँ। जितना वज़न खजूर के पलड़े में रखा, उतना वज़न बाँटों वाले पलड़े से कम कर दिया।"

"ध्यान दीजिए, यही तरीका हमें समीकरणों को हल करते समय भी अपनाना चाहिए। वास्तव में, हमने हल करने की जिन विधियों को लिखा है, वे सब ऐसे ही तरीके से सवालों को हल करती हैं। देखिए, इस गणित में दो पक्ष हैं इसलिए जो भी करना है, वो दोनों पक्षों के साथ समान रूप से करना है। यदि एक पक्ष को दो से भाग दिया, तो दूसरे पक्ष को भी दो से भाग देना होगा।"

वर्तमान गणित की भाषा में, किसी समीकरण के दोनों पक्षों पर समान क्रिया करने पर समीकरण सन्तुलित रहते हैं। उस समय की फारसी भाषा में इसे 'अलज़ाब्र' शब्द से जाना

यह चित्र इंटरनेट से साभार

चित्र-3: 8वीं शताब्दी में किताब 'अलकिताब अलमुक्तसर फी हिसाब अलज़ाब्र वलमुकाबला' का पुनर्मुद्रण हुआ था।

जाता था जिसका अर्थ था पुनर्सन्तुलन (restoration)। यानी समीकरण सन्तुलित रहे इसलिए समीकरण के एक पक्ष में जितना जोड़ा या घटाया जा रहा है, उतना ही दूसरे पक्ष में जोड़ा या घटाया जाए।

यह समीकरणों को हल करने की तार्किक पद्धति का जन्म था। ख्वारिज़्मी ने यह सभी बातें अपनी किताब *अलकिताब अलमुक्तसर फी हिसाब अलज़ाब्र वलमुकाबला* में लिखी हैं।

किताब के नाम में मौजूद 'अलज़ाब्र' शब्द से ही बीजगणित के लिए अँग्रेज़ी नाम अलज़ेब्रा निकलकर आया।

आमोद कारखानीस: पेशे से कम्प्यूटर इंजीनियर। लेखन एवं चित्रकारी का शौक। मुम्बई में रहते हैं।

मराठी से अनुवाद: माधव केलकर: *संदर्भ* पत्रिका से सम्बद्ध हैं।

सभी चित्र: मणिपद्मा हर्षवर्धन: आर.एस.जी. कलानिकेतन महाविद्यालय, कोल्हापुर, महाराष्ट्र में सहायक प्रध्यापक हैं। लगभग 12 वर्षों का शिक्षण अनुभव। शैक्षणिक ज़िम्मेदारियों के साथ-साथ, ग्राफिक्स और वाणिज्यिक विज्ञापन डिज़ाइनिंग में उल्लेखनीय व्यावहारिक विशेषज्ञता रखती हैं।

कल और कल में फर्क
एक भौतिकीय नज़रिया

अजय शर्मा

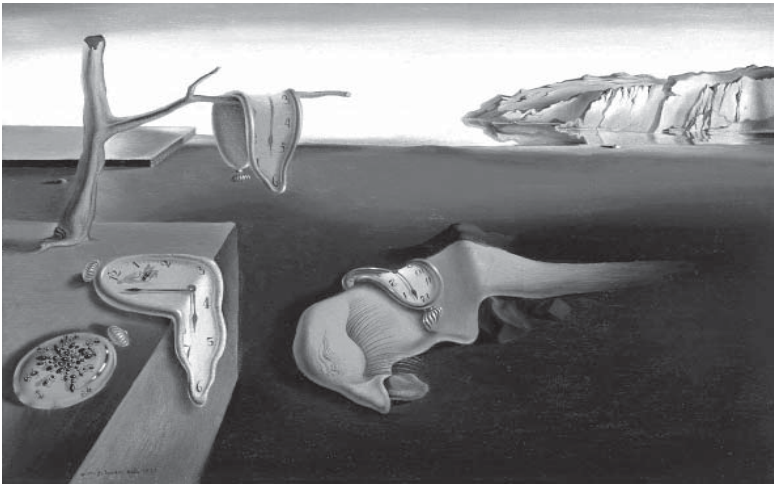

चित्र-1: साल्वाडोर डाली की एक प्रसिद्ध पेंटिंग।

वक्त रहता नहीं कहीं टिककर
आदत इसकी भी आदमी-सी है।
- गुलज़ार

जी हाँ, वक्त कहाँ टिकता है। भले ही कभी-कभार हम ऐसे मशगूल हो जाएँ कि वक्त का एहसास न रहे, वरना इसको हम हमेशा गुज़रता ही महसूस करते हैं। वो भी, सिर्फ एक ही दिशा में - अतीत से वर्तमान के ज़रिए भविष्य की ओर। आप सोचेंगे कि भला यह भी कोई कहने लायक बात हुई। समय आगे नहीं बढ़ेगा तो और कहाँ जाएगा? हम जब भी, जहाँ भी देखें, समय का गुज़रना या आगे बढ़ना ही अनुभव करते हैं। मसलन, वक्त गुज़रता है तो बीज अंकुरित होकर एक विशाल दरख्त बनता है; नवजात शिशु समय के साथ बड़ा होकर वयस्क बनता है; इत्र की एक बून्द फैलकर पूरे कमरे को महकाती है; और शीशे का गिलास हाथ से छूटकर ज़मीन पर गिरकर छोटे-छोटे टुकड़ों में बँटकर बिखर जाता है। इसका उलट होता तो कोई भी, कभी भी नहीं देखता है। और अगर कभी फिल्मों में हम ऐसा कुछ होता देखते

भी हैं, जैसे हीरो का एक छलांग में ज़मीन से बिल्डिंग की छत पर पहुँचना, तो तुरन्त हमारा शक इस तरफ जाता है कि कहीं डायरेक्टर ने फिल्म की उल्टी रील तो नहीं चला दी है। यानी हमारे सभी अनुभव तो यही बताते हैं कि समय केवल आगे ही बढ़ता है। यहाँ तक कि आपको शायद यह सवाल वाजिब ही न लगे कि आखिर ऐसा क्यों होता है।

अब भौतिकशास्त्रियों की क्या कहें, उनकी फितरत ही ऐसी है कि हर ज़ाहिर सच पर सवाल उठा देते हैं। पर मज़े की बात यह है कि ऐसे अजीब से सवालों के ज़रिए ही वे हम सबके लिए इस संसार के तमाम अनूठे राज़ परत-दर-परत बेनकाब कर पाते हैं। इस लेख में हम इसी सवाल पर गौर करेंगे कि आखिर समय का पहिया सिर्फ आगे की ओर क्यों दौड़ता है, और देखेंगे कि इस सवाल को टटोलने पर हमारे संसार के कौन-से छिपे पहलू उजागर होते हैं।

समय क्या है?

इस सवाल पर आगे बढ़ने से पहले मुनासिब होगा कि समय क्या है, इस पर एक साँझी समझ हासिल कर ली जाए। वैसे यह विषय बहुत विशाल है, और इस पर इतने मुक्तलिफ नज़रिए हैं कि इस मुद्दे पर एक क्या, अनेकों किताबें लिखी जा सकती हैं। बहरहाल, इस लेख के सीमित उद्देश्यों के मद्देनज़र हम समय को सिर्फ दो तरह से परिभाषित करेंगे। पहला, भौतिकी में ही नहीं, आम ज़िन्दगी में भी, समय एक निर्देशांक (coordinate) के रूप में काम करता है। किसी घटना के बारे में अगर आपको विस्तार से जानना है तो आप सिर्फ यह नहीं पूछते कि वह घटना कहाँ घटी, आप यह भी जानना चाहते हैं कि वह कब घटी। इस तरह हम विभिन्न घटनाओं को एक क्रम में बिठा पाते हैं, जिससे कि हम जान पाएँ कि कौन-सी घटना किस घटना के पहले हुई या बाद में।

इसी क्रम की वजह से ही हम कारण और परिणाम में न सिर्फ भेद करते हैं, बल्कि सही कारण को सही परिणाम से जोड़ने में भी मदद मिलती है। दूसरा, समय दुनिया में होने वाले बदलावों की निशानदेही भी करता है। इन बदलावों की वजह से हमें मालूम होता है कि कोई घटना कितनी देर चली। इस अन्तराल को हम घड़ियों और अन्य ऐसी प्रक्रियाओं के ज़रिए नापते हैं जो एक नियमितता से अपने आप को दोहराती हैं। ज़ाहिर है, इन बदलावों के ज़रिए ही हमें समय के गुज़रने का एहसास होता है।

अब वापस आते हैं हमारे बेतुके-से दिखने वाले सवाल पर। आप सोच रहे होंगे कि सवाल उठाना तो ठीक है, पर उसके पीछे आखिर कुछ तो कारण होना चाहिए। आपका ऐसा सोचना गलत नहीं है। भौतिकशास्त्रियों की भी इस सवाल पर गौर करने की

एक खास वजह है। वह यह कि आम जीवन में समय को सिर्फ आगे की दिशा में बढ़ते देखकर ऐसा लगता है कि शायद इसका कारण यह हो कि इस संसार के मूलभूत भौतिक नियम सिर्फ इस बात की इजाज़त देते हैं कि समय सिर्फ आगे ही बढ़े। पर जब भौतिकशास्त्री इन नियमों को टटोलते हैं तो यह पता चलता है कि इन सभी भौतिक नियमों का ज़रा-सा भी उल्लंघन नहीं होता है, अगर समय आगे की बजाय पीछे जाने लगे।

क्या समय पीछे भी जा सकता है?

यहाँ सवाल उठता है कि समय के पीछे जाने से हमारा तात्पर्य क्या है। गौर करें कि जैसा हमारी समय की दूसरी परिभाषा से इंगित होता है, समय के आगे बढ़ने का अन्दाज़ा हमें हमारी आसपास की दुनिया में होने वाले बदलावों से होता है। पन्द्रह मिनट पहले आपने गर्मा-गर्म चाय बनाई थी, और अब वह इस लेख को पढ़ने के चक्कर में ठण्डी हो गई है, कुछ देर पहले तक तो आप ठीक-ठाक थे, पर अभी किसी को देखकर आप के दिल की धड़कन बढ़ गई है, सूरज कुछ देर पहले तक तो पेड़ों में छुपा हुआ था पर अब ठीक सर के ऊपर है, इत्यादि, इत्यादि...। अगर आप आज और कल में तनिक भी फर्क न कर पाए, तो क्या आपके पास कोई आधार होगा, यह कहने का कि समय आगे बढ़ा है?

और अगर बदलाव हो रहे हैं, मगर एकदम उल्टी दिशा में, जैसे कि आपकी ठण्डी चाय का कप अपने-आप फिर से गर्म होने लगे, घड़ी की सूइयाँ पीछे घूमने लगें, और सूरज दिन का अपना सफर पूर्व से पश्चिम की जगह पश्चिम से पूर्व की ओर तय करने लगे, तो क्या आपका यह निष्कर्ष सही नहीं होगा कि समय आगे की बजाय पीछे जाने लगा है? ध्यान दें कि यह निष्कर्ष हमारे अनुभवों पर आधारित होगा, न कि समय के किसी स्वतंत्र भौतिक गुण पर। बात मूल विषय से भटक न जाए और अपवादों के बोझ तले दब न

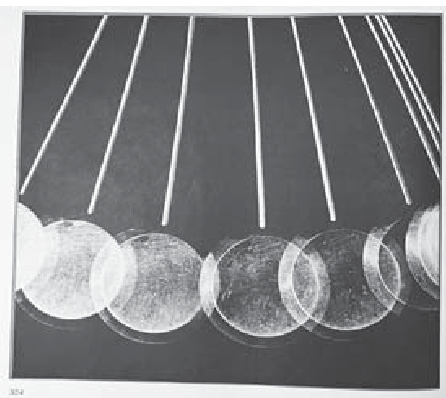

***चित्र-2**: टाइम रिवर्सल सिमिट्री - हमारे दैनिक उदाहरणों में बदलाव समय आगे बढ़ने के साथ दिखाई देते हैं। समय पीछे जाता हुआ समझ नहीं आता। गरम रखी चाय समय आगे बढ़ने के साथ ठण्डी ही होती जाएगी। घड़ी की सूइयाँ भी आगे की दिशा में बढ़ती जाती हैं। सोचिए, घड़ी की सूई अगर उलट दिशा में चलने लगे तो क्या समय आगे की बजाय पीछे जाने लगेगा?*

सके, इसलिए भौतिकशास्त्री अक्सर किसी भी मुद्दे पर अपनी चर्चा एक निकाय (system) तक सीमित रखते हैं। इस सीमित दायरे के अन्दर यह कहा जा सकता है कि यदि किसी सिस्टम में होने वाले सभी परिवर्तन हमारे अनुभव और समझ के विपरीत क्रम में घटित हों, तो कम-से-कम भौतिकी के औपचारिक ढाँचे में उस सिस्टम का विकास ऐसा प्रतीत होगा मानो वह समय-उलट (time-reversed) अवस्था में हो रहा है। यानी उस सिस्टम के विकास का वर्णन वही मूल भौतिक नियमों का उपयोग करके किया जा सकेगा, बशर्ते समय के चिन्ह को उलटकर ($t \rightarrow -t$) समीकरणों में इस्तेमाल किया जाए।

यानी इन सब नियमों में समय-उलट सममिति (time reversal symmetry) पाई जाती है। मसलन, अगर भौतिक नियमों के अन्तर्गत किसी वस्तु की कोई गति/चाल (motion) मुमकिन है, तो आदर्श परिस्थितियों में उस वस्तु की एकदम विपरीत गति भी उतनी ही नियम-संगत पाई जाती है। फर्ज़ कीजिए कि आप एक गेंद को एक ऊँचाई से गिराकर उसके ज़मीन से टकराकर वापिस उछलने की फिल्म बनाते हैं। अब अगर ज़मीन से टकराने में, या किसी भी और वजह से उस गेंद की गतिज ऊर्जा ज़रा-सा भी ज़ाया नहीं होती है, तो इस फिल्म को आप सही दिशा में चलाएँ या उल्टी चलाएँ, कोई फर्क नहीं बता पाएगा।[1] एक और उदाहरण ले लेते हैं। अगर हम सूर्य के उत्तरी ध्रुव पर खड़े होकर देखें तो पाएँगे कि इस सौरमण्डल के सभी ग्रह घड़ी की सूई से विपरीत दिशा में सूर्य की परिक्रमा करते हैं। अब अगर किसी वजह से कोई ग्रह उल्टा यानी घड़ी की सूई की दिशा में सूरज का चक्कर लगाने लगे तो क्या इससे भौतिक नियमों का उल्लंघन हो जाएगा? बिलकुल नहीं। गुरुत्वाकर्षण के नियम ऐसे हैं कि इस बात का कोई फर्क नहीं पड़ता कि कोई ग्रह सीधा चक्कर लगा रहा है या उल्टा। ऐसे सिस्टम में अगर वस्तुओं की चाल से ही हमें समय के गुज़रने का पता चलता है, और

चित्र-3: *गिरकर टूटा कप – क्या रिवर्सल सिमिट्री के दायरे में गिरकर टूट गए कप को भी शामिल कर सकते हैं।*

[1] *यकीन न आए, तो इंटरनेट पर कई सारी वेबसाइट और सॉफ्टवेयर उपलब्ध हैं जिसके ज़रिए आप ऐसी फिल्म को उल्टी दिशा में चलाकर, इस बात की परख कर सकते हैं।*

भौतिकीय नियम इस बात की परवाह नहीं कर रहे कि वस्तु की चाल/गति की दिशा आपके अनुभवों से एकमत है या विपरीत है, तो आपको कैसे पता चलेगा कि किसी भी ऐसे सिस्टम में समय आगे की ओर बढ़ रहा है या पीछे जा रहा है?

यह सिर्फ किसी एक वस्तु की गति की बात नहीं है। मसलन, अगर आपके पास एक सिस्टम है जिसमें कई सारे कण स्वतंत्रता से अपनी-अपनी गति से विचर रहे हैं, और आप अगर किसी तरह से उन सब की गति को उल्टा कर देते हैं, तो आपका सिस्टम बिना किसी नियम का उल्लंघन किए, बहुत ही स्वाभाविक तरह से पहले की अवस्था में जाने लगेगा – मानो समय उल्टी दिशा में बहने लगा हो। समय-उलट सममिति सिर्फ वस्तुओं की चाल या गुरुत्वाकर्षण के नियमों तक ही सीमित नहीं है। अधिकांश मूलभूत भौतिक नियमों में समय उलट सममिति पाई जाती है। यहाँ तक कि क्वांटम भौतिकी भी समय-उलटता के प्रति सममित है।

अब, जैसा कि आप शायद सोच रहे होंगे, यह सममिति एक बेहद रोचक पहेली को जन्म देती है। यही गुत्थी हमारे मूल प्रश्न का सबब है कि समय सिर्फ आगे ही क्यों जाता है। पहेली यह है कि अगर मूलभूत भौतिक नियमों को ज़रा-सा भी फर्क नहीं पड़ता कि समय आगे जाए या पीछे, तो न सिर्फ हमारे व्यक्तिगत जीवन और समाज में बल्कि समूचे ब्रह्माण्ड में भी समय सिर्फ एक ही दिशा में, यानी आगे की ओर, ही बढ़ता क्यों दिखता है? अगर इन नियमों के हिसाब से बीते हुए कल और आने वाल कल में कोई फर्क नहीं है, तो क्या हमारे सभी अनुभव भ्रामक हैं?

ऊष्मा गतिकी के नियम

इस पहेली का जन्म उन्नीसवीं सदी में थर्मोडायनामिक्स (ऊष्मागतिकी) के सन्दर्भ में हुआ था। याद करें, यह ऊष्मा से चलने वाले भाप-इंजनों का दौर था। इसलिए इस युग के वैज्ञानिकों में ऊष्मा और उसके गुणों को समझने में काफी रुचि थी। इनमें एक प्रमुख नाम है फ्रांस के 'सादी कार्नोट' का।[2] भाप इंजनों पर शोध करने पर उन्हें समझ आया कि भाप इंजन तभी काम करते हैं जब ऊष्मा एक गर्म जगह/पिण्ड से ठण्डी जगह/पिण्ड की तरफ जाती है। 1824 में उन्होंने अपनी यह खोज एक पर्चा लिखकर अपने साथियों के साथ साझा की। यह पर्चा कई वैज्ञानिकों ने पढ़ा, पर इसका मूल मर्म केवल जर्मन वैज्ञानिक, रुडोल्फ क्लॉसियस, ही समझ पाए। वे भाँप गए कि कार्नोट

[2] इनके पिता, लज़ारे कार्नोट, फारसी कवि सादी शिराज़ी के बड़े फैन थे। कहा जाता है कि यही वजह है कि उन्होंने अपने बेटे का नाम अपने पसन्दीदा शायर के नाम पर रखा।

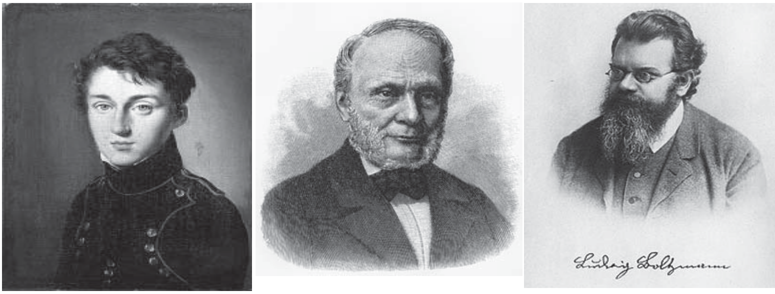

चित्र-4: सादी कार्नोट-रुडोल्फ क्लाउसियस-बोल्ट्ज़मान: उन्नीसवीं सदी में ऊष्मा के विविध गुणधर्मों को समझते हुए ऊष्मागतिकी के नियमों को प्रतिपादित करने में महती भूमिका निभाई।

की खोज प्रकृति के नियम की ओर इशारा करती है जिसे हम आज ऊष्मागतिकी के दूसरे नियम के रूप में जानते हैं। इस नियम के अनुसार, किसी भी सिस्टम में ऊष्मा अपने आप कभी भी ठण्डे स्थान/पिण्ड से गर्म स्थान की ओर नहीं जा सकती है, जब तक कि बाहरी कार्य न किया जाए। यानी उसका स्वतः स्थानान्तरण केवल गर्म स्थान/पिण्ड से ठण्डे स्थान/पिण्ड की ओर ही हो सकता है।

यह पहली खोज थी जहाँ वैज्ञानिकों ने देखा कि प्रकृति के मूलभूत भौतिकीय नियमों में एक नियम तो ऐसा है जो समय-उलटता के प्रति सममित नहीं है। चूँकि बदलाव के ज़रिए ही हमें समय के बहने का पता चलता है, यही वो नियम है जिसमें अतीत और भविष्य में साफ फर्क नज़र आता है। क्योंकि सिस्टम चाहे जो भी हो, ऊष्मागतिकीय बदलाव (गर्म से ठण्डे की ओर) की दिशा सिर्फ एक ही होती है। भौतिकशास्त्री जब प्रकृति का कोई नया गुण खोजते हैं, तो उसका वर्णन और मापन करने के लिए अक्सर एक नई गणितीय मात्रा की भी प्रस्तावना करते हैं। क्लॉसियस ने ऊष्मागतिकीय बदलाव के मापन के लिए एक नई आदिश (scalar) मात्रा का सुझाव रखा जिसे उन्होंने एंट्रॉपी (entropy; चिह्न:S) नाम दिया। साथ ही, उन्होंने ऊष्मागतिकी के दूसरे नियम का एक वैकल्पिक रूप प्रस्तुत किया जिसके अनुसार, किसी भी प्रक्रिया के दौरान एक पृथक (isolated) सिस्टम की एंट्रॉपी या तो बढ़ती है या स्थिर रहती है; वह कभी कम नहीं हो सकती। गणितीय भाषा में: $\Delta S_{total} \geq 0$.

ऊष्मागतिकी में छुपी पहेली

क्लॉसियस ने ऊष्मागतिकी के दूसरे नियम को प्रतिपादित तो किया पर उसके पीछे छिपी पहेली को पहचान नहीं पाए। इस पहेली को सबसे पहले पहचाना जर्मनी के ही

जोसफ लोश्मिमड्ट ने। हुआ कुछ ऐसा कि 1870 के दशक में जर्मन वैज्ञानिक लुडविग बोल्ट्ज़मान सांख्यिकीय तर्कों द्वारा यह दिखाने में कामयाब हो गए कि एक ऐसे पृथक सिस्टम में जिसमें कई सारे आज़ाद अणु एक-दूसरे से टकराते हुए स्वतंत्र विचरण कर रहे हों, ऊष्मागतिकीय बदलाव ऐसी ही दिशा में होते हैं जिसमें एंट्रॉपी या तो स्थिर रहती है या बढ़ती है। इस कथन को बोल्ट्ज़मान की एच-थ्योरम (H-theorem) भी कहा जाता है।

बोल्ट्ज़मान के इस दावे को उनके मित्र लोश्मिमड्ट ने 1876 में एक पर्चा लिखकर चुनौती दी और कहा कि बोल्ट्ज़मान का तर्क गलत है क्योंकि यह एक प्रतिवर्तनीयता विरोधाभास (reversibility paradox) को जन्म देता है। इस विरोधाभास के अनुसार, अगर ऐसे सिस्टम में अणुओं का विचरना और आपस में टकराना भौतिकी के समय-उलट सममित नियमों के आधार पर हो रहा है तो उनके ऐसे व्यवहार से एक अपरिवर्तनीय प्रक्रिया (एंट्रॉपी का हमेशा स्थिर रहना या बढ़ना) का जन्म तो नहीं होना चाहिए। पर हम देखते तो यही हैं कि पृथक सिस्टम की एंट्रॉपी किसी भी प्रक्रिया के दौरान कभी भी कम नहीं होती है।

लोश्मिमड्ट की चुनौती में दम था। लिहाज़ा, बोल्ट्ज़मान ने लोश्मिमड्ट द्वारा उठाए गए विरोधाभास को गम्भीरता से लेते हुए अपनी सोच को बदला और ऊष्मागतिकी के दूसरे नियम को एक गतिक नियम (dynamical law) की तरह नहीं बल्कि एक सांख्यिकीय नियम (statistical law) की तरह से समझने की दरकार पेश की। यानी उन्होंने कहा कि पृथक सिस्टम में एंट्रॉपी का बढ़ना या स्थिर रहना हमें इसलिए नहीं दिखता कि वह मूलभूत नियमों की एक ज़रूरत है, बल्कि ऐसा होते हुए इसलिए दिखता है क्योंकि एंट्रॉपी के स्वतः कम होने की सम्भावना बहुत-ही कम होती है।

सूक्ष्म एवं स्थूल स्थिति

गौरतलब बात यह है कि बोल्ट्ज़मान ने ऊष्मागतिकी के दूसरे नियम को संख्यिकीय जामा पहनाने के लिए एंट्रॉपी को एक नए तरीके से परिभाषित किया। यह परिभाषा हम आज तक इस्तेमाल करते हैं। इस परिभाषा को वर्णित करने से पहले कुछ बातें बताना ज़रूरी हैं। अक्सर एक सिस्टम ऐसी कई सारी विभिन्न और बारीकी-से वर्णित सूक्ष्म परिस्थितियों (microstates) में पाया जा सकता है, जिन्हें हम मोटे तौर पर समतुल्य मानते हुए एक ही स्थूल स्थिति (macrostate) को दर्शाते हुए मान सकते हैं।

मिसाल के तौर पर, फर्ज़ कीजिए कि आपके पास कुल सौ रुपए हैं जो आपकी एक जेब में रखे हुए हैं और

आपके कपड़ों में कुल मिलाकर तीन ही जेब हैं। यह हो गई आपकी स्थूल स्थिति। अब आपके पास यह राशि कई तरह से हो सकती है। मसलन, यह राशि आपकी पेंट की आगे की बाईं जेब, दाईं जेब, या शर्ट की जेब में हो सकती है। इस उदाहरण में सौ के नोट का किसी खास जेब में होना आपकी एक खास सूक्ष्म परिस्थिति को दर्शाता है। अगर आपके कपड़ों में कुल मिलाकर बस तीन ही जेब हैं, तो आप तीन सूक्ष्म परिस्थितियों में पाए जा सकते हैं, जो एक स्थूल स्थिति, यानी आपके पास एक सौ रुपए का नोट, के समतुल्य है।

इसी तरह, किसी भी सिस्टम का संख्यिकीय तौर पर वर्णन करने के लिए आप कोई ऐसी स्थूल स्थिति को चुन सकते हैं जो असल में उसकी तमाम मुक्तलिफ सूक्ष्म परिस्थितियों का मोटे तौर पर सही वर्णन करता है। मसलन, अगर एक गैस का गुब्बारा आपका सिस्टम है तो 'तापमान = 300K, दबाव = 1 atm, आयतन = 1 लीटर, N = 10^{23} अणु' इसकी एक स्थूल स्थिति मानी जा सकती है। अब यह स्थूल स्थिति उन सब सूक्ष्म परिस्थितियों के समतुल्य होगी जिसमें 10^{23} अणु अलग-अलग जगह और अलग-अलग गतियों से गुब्बारे के अन्दर भ्रमण कर रहे हैं, पर फिर भी कुल मिलाकर गुब्बारे का तापमान 300K, दबाव = 1 atm और आयतन 1 लीटर ही निकलता है। गौर करें कि किसी सूक्ष्म परिस्थिति को सिर्फ कणों की जगह नहीं बल्कि उनकी चाल और दिशा (वेग) भी परिभाषित करती है। इसलिए दो सूक्ष्म परिस्थितियाँ तब भी अलग मानी जाती हैं जब उनमें कणों की जगह एक-जैसी हो पर वेग अलग हो।

एंट्रॉपी यानी कितनी अव्यवस्था

अब आते हैं एंट्रॉपी की परिभाषा पर। यह एक आदिश संख्या है जो एक सिस्टम के बारे में बताती है कि उसकी एक स्थूल स्थिति कितनी सारी सूक्ष्म परिस्थितियों के समतुल्य है। मोटे तौर पर इस जानकारी से हमें पता चलता है कि इस सिस्टम में कितनी अव्यवस्था है।

आइए, देखते हैं कैसे। फर्ज़ कीजिए कि आपके पास दस पुस्तकों की एक छोटी-सी अलमारी है जिसमें पाँच हिन्दी और पाँच इंग्लिश की किताबें हैं। आपने ये किताबें एक व्यवस्था के हिसाब से जमाकर रखी हैं, यानी हरेक किताब की आपकी व्यवस्था अनुसार, एक खास जगह है। ऐसे में इस अलमारी की स्थूल स्थिति सिर्फ एक सूक्ष्म परिस्थिति के समतुल्य है, क्योंकि आपके इन्तज़ाम के हिसाब से कोई भी किताब इधर-से-उधर नहीं हो सकती है। ज़ाहिर है, ऐसे हालात में आपकी अलमारी की एंट्रॉपी न्यूनतम ही होगी। अब आपका कोई मित्र आता है और इंग्लिश किताबों को नीचे वाले व हिन्दी किताबें ऊपर

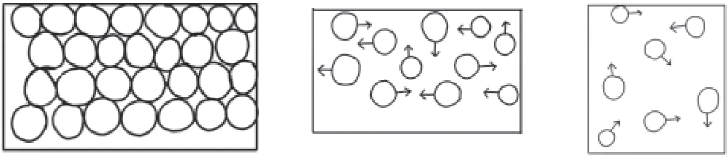

चित्र-5: बर्फ, बर्फ पिघलना, भाप बनना - इन तीनों अवस्थाओं में बर्फ में पानी के अणुओं की जमावट ज़्यादा व्यवस्थित होती है इसलिए एंट्रॉपी कम होती है। बर्फ पिघलकर पानी बनने की अवस्था में अभी भी अणुओं की जमावट में कुछ व्यवस्था है फिर भी अणुओं को हलचल के लिए ज़्यादा जगह मिलती है, परिणामस्वरूप एंट्रॉपी बढ़ जाती है। भाप बनने की अवस्था में पहले वाली अणुओं की जमावट कम दिखाई देती है। अणु पहले के मुकाबले ज़्यादा स्वच्छन्दता से यहाँ-वहाँ जा रहे हैं। यहाँ एंट्रॉपी पहले से ज़्यादा बढ़ गई है। यह चित्र केवल सांकेतिक है।

वाले शेल्फ में बेतरतीब तरीके से बाँट देता है। यकीनन आपके मित्र ने आपकी अलमारी में छेड़-छाड़ कर उसे थोड़ा अव्यवस्थित कर दिया है। इस बढ़ी हुई अव्यवस्था को अब एंट्रॉपी की भाषा में समझते हैं।

यदि यह मान लिया जाए कि कोई भी दो किताबें एक-जैसी नहीं हैं, तो दोनों शेल्फ की किताबें 5x4x3x2x1 = 120 तरीकों से जमाई जा सकती हैं। यानी दोनों शेल्फ को मिलाकर इस अलमारी की 120x120 = 14,400 सूक्ष्म परिस्थितियाँ एक स्थूल परिस्थिति, जिसमें अँग्रेज़ी और हिन्दी की पुस्तकें दो शेल्फ में बँटी हुई हैं, के समतुल्य देखी जा सकती हैं। इन गणनाओं के आधार पर आप अपने मित्र को वैज्ञानिक भाषा में यह कहकर अपनी नाराज़गी ज़ाहिर कर सकते हैं कि उसने खामख्वाह आपकी सजी-सजाई अलमारी की एंट्रॉपी में बहुत इज़ाफा कर दिया है।

बर्फ पिघलना और इत्र महकना

यह तो एक कृत्रिम उदाहरण था, पर आप अगर गौर करें तो अपने इर्द-गिर्द ऐसे तमाम सिस्टम देख सकते हैं, जिनमें वक्त के साथ अपने आप ही स्वाभाविक रूप से अव्यवस्था और एंट्रॉपी बढ़ती हुई देखी जा सकती है। बर्फ का टुकड़ा खुले में रखने पर कुछ देर में अपने आप पिघलकर पानी बन जाता है। पहले, बर्फ में पानी के अणु बड़े ही व्यवस्थित तरीके से जमे हुए थे। इस वजह से इसकी स्थूल स्थिति थोड़ी ही सूक्ष्म परिस्थितियों के समतुल्य थी। ज़ाहिर है कि ऐसे में बर्फ के टुकड़े की एंट्रॉपी भी कम ही होगी। पिघलने की वजह से पानी के यही अणु अपनी जगह से हटने के लिए स्वतंत्र हो जाते हैं। ऐसे में बहुत सारी सूक्ष्म परिस्थितियाँ ऐसी होंगी जिनमें कोई खास फर्क नहीं किया जा सकता। यानी पिघलने के बाद पानी की स्थूल स्थिति बहुत सारी सूक्ष्म परिस्थितियों

के समतुल्य हो जाती है। लिहाज़ा, पिघलने पर बर्फ के पानी की अव्यवस्था और एंट्रॉपी, दोनों बढ़ जाती हैं।

ऐसे ही तर्क की मदद से आप देख सकते हैं कि इत्र की बोतल खुलने पर जब पूरा कमरा महक उठता है, तो वैज्ञानिक नज़रिए से इस प्रक्रिया में पूरे कमरे की अव्यवस्था यानी एंट्रॉपी में इज़ाफा होता है। प्रकृति में ऊष्मागतिकी के दूसरे नियम का कोई अपवाद नहीं है। यानी सभी पृथक सिस्टम में वक्त के साथ अव्यवस्था और एंट्रॉपी कभी भी कम होती हुई नहीं देखी जाती है। आप आज अपना घर साफ-सुथरा करके व्यवस्थित करें, पर कुछ दिनों में वह अव्यवस्थित हो ही जाता है। आज जो चीज़ नई है, वो कुछ समय बाद टूट-फूटकर पुरानी हो ही जाती है।

सिस्टम पृथक न हो तो?

अब आप सोच रहे होंगे कि हमेशा तो ऐसा नहीं होता है। आखिर जब एक छोटा-सा बीज अंकुरित होकर एक विशाल दरख्त बन जाता है, नवजात शिशु बड़ा होकर छह-फुटा जवान बन जाता है, या फिर गर्म चाय रखी-रखी ठण्डी हो जाती है, तो क्या इन सबमें भी समय के साथ अव्यवस्था और एंट्रॉपी बढ़ रही होती है? आपका शक सही है। इन सभी प्रक्रियाओं में समय के साथ अव्यवस्था बढ़ती नहीं है बल्कि कम ही होती दिखती है। पर ध्यान दें, ऊष्मागतिकी का दूसरा नियम पृथक सिस्टम पर ही लागू होता है, उन सिस्टम पर नहीं जो अपने आसपास से ऊर्जा और पदार्थों का आदान-प्रदान कर रहे होते हैं। इन सभी उदाहरणों में कोई भी सिस्टम अपने वातावरण से पृथक नहीं है। बीज और नवजात शिशु जैसे जैविक सिस्टम की खासियत होती है कि वे एक हद तक अपनी खुद की अव्यवस्था और एंट्रॉपी को बढ़ने से रोक सकते हैं। पर इसकी कीमत वातावरण को चुकानी पड़ती है। यानी, बीज के पेड़ बनने या शिशु के वयस्क होने पर भले ही उनकी एंट्रॉपी कम हो जाए, पर इस प्रक्रिया में वातावरण की एंट्रॉपी और अव्यवस्था कहीं ज़्यादा मात्रा में बढ़ जाती है। यानी, पेड़ और वातावरण (या शिशु और वातावरण) को मिलाकर देखें तो वक्त के साथ कुल अव्यवस्था और एंट्रॉपी बढ़ती ही है, कभी कम नहीं होती है।

चाय के कप के साथ भी कुछ ऐसा ही होता है। जब चाय ठण्डी हो रही होती है तो ऊष्मा के ज़रिए वह अपनी काफी ऊर्जा अपने वातावरण में बाँट देती है। केवल चाय की बात करें, तो भले ही उसके ठण्डा होने पर उसकी एंट्रॉपी (या अव्यवस्था) में कमी आती है किन्तु इस प्रक्रिया में ऊर्जा को ग्रहण करने के कारण वातावरण की एंट्रॉपी (या अव्यवस्था) उससे कहीं अधिक बढ़ जाती है।

पृथक सिस्टम में बदलाव की दिशा

हम अगर बदलाव को एंट्रॉपी के नज़रिए से समझें तो हमारा अनुभव हमें यही बताता है कि दुनिया में पृथक सिस्टम में होने वाले बदलाव एक ही दिशा में होते हैं। इन बदलावों में एंट्रॉपी या तो स्थिर रहती है या बढ़ती है।[3] अब जैसा कि हम पहले ज़िक्र कर चुके हैं, चूँकि समय के आगे बढ़ने का एहसास हमें बदलावों के ज़रिए ही होता है, ऊष्मागतिकी के दूसरे नियम की बदौलत ही हमें समय हमेशा आगे की ओर बढ़ता हुआ दिखता है। यहाँ पर एक स्पष्टीकरण ज़रूरी है। वह यह कि जैसा कि बोल्ट्ज़मान ने लोश्मिमड्ट के साथ हुई बहस में ऊष्मागतिकी के दूसरे नियम के बारे में खुलासा किया था - यह नियम एक गतिक नियम नहीं, बल्कि एक सांख्यिकीय नियम है।

लिहाज़ा, इस नियम में यह नहीं कहा जा रहा कि किसी पृथक सिस्टम में कभी भी अव्यवस्था और एंट्रॉपी समय के साथ खुदबखुद घट नहीं सकती है। ऐसा बिलकुल हो सकता है, और अगर ऐसा हो तो इसमें भौतिकी के मूलभूत नियमों का ज़रा-सा भी उल्लंघन नहीं होगा। पर हमें ऐसा होता हुआ नहीं दिखता है। यह इसलिए कि केवल सांख्यिकीय कारणों के चलते अव्यवस्था और एंट्रॉपी की समय के साथ खुदबखुद घटने की सम्भावना बहुत-बहुत ही कम होती है। यह लगभग वैसा ही है जैसे वन-डे वर्ल्ड कप क्रिकेट फाइनल में दसवीं पायदान पर आने वाला बल्लेबाज़ आखिरी ओवर की छहों बॉलों पर छक्के लगा सकता है, पर हम ऐसा होते हुए नहीं देखते हैं, क्योंकि ऐसा होने की सम्भावना बहुत ही कम होती है। यह सम्भावना कितनी कम होती है, इसका अन्दाज़ा इत्र की खुली बॉटल के उदाहरण से मिल सकता है। जैसा कि आप जानते हैं, इत्र की शीशी खोलने पर इत्र की एक बूँद के कण पूरे कमरे में फैलकर कमरे को सुगन्धित कर देते हैं। अब इत्र के कण तो कमरे के वातावरण में विचरने के लिए आज़ाद हैं, तो जिस स्वतंत्रता से वे विचरकर पूरे कमरे में फैल जाते हैं, उसी स्वतंत्रता की बदौलत कुछ समय बाद वे खुदबखुद वापस बॉटल में समा भी सकते हैं। पर ऐसा होते हुए हम नहीं देखते हैं क्योंकि सांख्यिकीय गणनाओं के आधार पर ऐसा होने की सम्भावना लगभग $10^{-(10^{20})}$ ($=10^{-100,000,000,000,000,000,000}$) है। यह सम्भावना इतनी कम है कि यदि आप इसके घटित होने की प्रतीक्षा इस ब्रह्माण्ड की आयु से भी अधिक समय तक करें, तब भी सम्भवतः आपको ऐसा होते देखने का अवसर नहीं मिलेगा।

[3] *अक्सर, ज़्यादातर हालातों में एंट्रॉपी बढ़ती ही है, स्थिर रहने की नौबत बहुत ही कम आती है।*

चित्र-6: जब इत्र किसी बोतल में बन्द होता है तो उसके अणुओं को हलचल के मौके कम होते हैं। स्प्रे करने पर इत्र के अणु कमरे में फैल जाते हैं इसलिए वे पहले के मुकाबले ज़्यादा हलचल कर पाते हैं। यहाँ एंट्रॉपी पहले के मुकाबले कहीं ज़्यादा बढ़ गई है।

दो-तरफा समय

इस सम्भावना के इतना कम होने का एक प्रमुख कारण इस उदाहरण में इत्र के कणों की अत्यधिक संख्या है।[4] केवल सांख्यिकीय तर्कों के आधार पर देखा जा सकता है कि एक सिस्टम में जितने ज़्यादा कण/हिस्से/इकाइयाँ होंगे, यह सम्भावना उतनी ही कम होती जाती है कि समय के साथ इस सिस्टम की एंट्रॉपी खुदबखुद कम हो जाए। यानी ऊष्मागतिकी का दूसरा नियम बड़े, स्थूलस्तरीय (macroscopic) सिस्टम में – जिनमें बहुत बड़ी संख्या में कण, हिस्से या पुर्ज़े होते हैं, और जो हमें अपने दैनिक जीवन में देखने को मिलते हैं – अत्यन्त दृढ़ता से लागू होता है। किन्तु यदि आपके सिस्टम में 100 से कम कण हों, तो इस नियम के विपरीत सिस्टम की एंट्रॉपी (या अव्यवस्था) अपने आप कम होते देखने के लिए आपको अधिक समय तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ेगी।

दस और उससे कम कणों के सिस्टम में तो एंट्रॉपी अपने आप घटती-बढ़ती रहती है। और अगर आपके सिस्टम में एक ही कण है, तो ऐसे सिस्टम में ऊष्मागतिकी के दूसरे नियम का कोई मतलब ही नहीं है। यानी इसका अर्थ यह भी हुआ कि अगर आपके ब्रह्माण्ड में कुल जमा दस या उससे कम कण हैं, तो ऐसे ब्रह्माण्ड में एंट्रॉपी के घटते-बढ़ते रहने के कारण समय की कोई खास दिशा नहीं होगी। वह कभी आगे तो कभी पीछे जाता दिखेगा। ज़ाहिर है, ऐसे ब्रह्माण्ड में हमारा होना नामुमकिन है। हमारा असंख्य कणों वाला ब्रह्माण्ड ऊष्मागतिकी के दूसरे नियम के लिए पूरा मुफीद है। ऐसे ब्रह्माण्ड में एंट्रॉपी हमेशा बढ़ती और काल-चक्र सिर्फ आगे की ओर ही घूमता दिखेगा।

ब्रह्माण्ड की न्यूनतम एंट्रॉपी

बीते हुए कल और आने वाले कल में यही सबसे बड़ा अन्तर है – समय

[4] *इत्र की एक बूँद में लगभग 10^{20} अणु होते होंगे।*

के साथ एंट्रॉपी का बढ़ना। यही काल-चक्र के आगे घूमने की एकमात्र निशानी है। अब यहाँ एक सवाल लाज़मी है: अगर एंट्रॉपी लगातार बढ़ती ही जाती है, तो सबसे कम कब रही होगी? भौतिकशास्त्रियों का मानना है कि इस ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के समय उसकी व्यवस्थता (order) अधिकतम और एंट्रॉपी न्यूनतम थी। तब से समय के साथ ब्रह्माण्ड की कुल एंट्रॉपी बढ़ती जा रही है।

यकीनन, एक वक्त ऐसा भी आएगा जब ब्रह्माण्ड में अव्यवस्थता अधिकतम हो जाएगी और एंट्रॉपी का और बढ़ना थम जाएगा। ऐसे ब्रह्माण्ड में कुछ नया, कुछ बदलाव नहीं हो रहा होगा। तब वक्त थम जाएगा और ब्रह्माण्ड का एक तरह से अन्त हो जाएगा। घबराएँ नहीं, ऐसा हाल-फिलहाल में नहीं होने वाला। भौतिकशास्त्रियों का ऐसा अनुमान है कि इस कयामत को आते-आते करीब 10^{100} साल तो लग ही जाएँगे।

भौतिकी का आधार स्तम्भ नियम

सांख्यिकीय बुनियाद पर टिके होने की वजह से भले ही ऊष्मागतिकी के दूसरे नियम को भौतिकी के मूलभूत नियमों की श्रेणी में न रखा जाता हो, पर महत्ता में यह किसी नियम से कम नहीं है। न सिर्फ यही नियम है जो समय की दिशा तय करता है, बल्कि आइंस्टाइन का तो मानना था कि आने वाले समय में अगर बाकी सब नियम आधे-अधूरे या गलत साबित हो भी जाएँ, तब भी ऊष्मागतिकी का दूसरा नियम हमेशा भौतिकी का आधार-स्तम्भ बना रहेगा। यह इसलिए कि अन्य भौतिक नियमों से मुक्तलिफ, यह नियम हमारी दुनिया के भौतिक तथ्यों पर कम और खालिस गणित और तर्क पर ज़्यादा टिका हुआ है। साथ ही, यह नियम हमारी दुनिया के एक बहुत ही दिलचस्प और महत्वपूर्ण पहलू को उजागर करता है। भौतिकशास्त्री रिचर्ड फाइनमेन (Richard Feynman) का मानना था कि वक्त का आगे बढ़ना हमें बताता है कि केवल भौतिकी के मूलभूत नियमों के ज़रिए आप दुनिया के कई महत्वपूर्ण पहलुओं को नहीं समझ सकते हैं। हमारी दुनिया के अनुभव प्रायः इन नियमों से कहीं दूर, एक अलग ही स्तर पर होते हैं।

फाइनमेन का इशारा था कि संसार का अस्तित्व कई स्तरों पर समझा जा सकता है। हर स्तर पर ऐसे नए गुण उभरते हैं जिन्हें समझने के लिए अलग अवधारणाओं और नियमों की ज़रूरत पड़ती है। फाइनमेन के अनुसार, इन विभिन्न स्तरों को बढ़ती जटिलता के क्रम में जमाकर देखा जा सकता है। सबसे सरलतम स्तर पर संसार को समझने के लिए भौतिकी के मूलभूत नियम पर्याप्त साबित होते हैं। लेकिन जैसे-जैसे हम जटिलता के स्तर पर ऊपर

जाते जाएँगे, उजागर हुए नए पहलुओं को समझने के लिए हमें नए नियम और अवधारणाओं की ज़रूरत पड़ती है। मसलन, अगर आपके सिस्टम में दो-चार कण ही हैं, तो इस सिस्टम में होने वाली घटनाओं को समझने के लिए भौतिकी के मूलभूत नियम काफी होते हैं। लेकिन जैसे ही सिस्टम में 100 से अधिक कण हो जाते हैं, तो ऐसे सिस्टम को समझने के लिए हमें समय के साथ-साथ तापमान और दबाव जैसी कई और अवधारणाओं व ऊष्मागतिकी के नियमों जैसे कई और नियमों की आवश्यकता महसूस होने लगती है। फाइनमेन का मानना था कि इस तरह आगे बढ़ते हुए जब हम आखिरी स्तर पर पहुँचते हैं तो पाप-पुण्य, सौन्दर्य, और आशा जैसे दुनिया के जटिलतम पहलुओं से मुखातिब होते हैं, जिन्हें समझने के लिए हमें सम्भवतः दर्शनशास्त्र का सहारा लेना पड़ेगा। उनके अनुसार, संसार की समग्र और गहरी समझ के लिए ज़रूरी है कि हम दुनिया के विभिन्न स्तरों को पहचानें और उनके बीच के जुड़ावों को समझने का प्रयास करें।

अजय शर्मा: एथेंस, संयुक्त राज्य अमेरिका में यूनिवर्सिटी ऑफ जॉर्जिया के शैक्षणिक सिद्धान्त और अभ्यास विभाग (डिपार्टमेंट ऑफ एजुकेशनल थ्योरी एंड प्रैक्टिस) में प्रोफेसर के तौर पर कार्यरत हैं। उनका मौजूदा शोध शिक्षा पर नवउदारवाद के प्रभाव के सैद्धान्तिक तथा नृवंशविज्ञान सम्बन्धी अन्वेषण पर केन्द्रित है। 1990 के दशक में, एक फुल-टाइम अकादमिक बनने से पहले, वे होशंगाबाद, मध्य प्रदेश में होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम के साथ काम करते थे।

ओझल दुनिया का नुमाया होना

यूवान एविस के साथ फ़ज़ल रशीद की बातचीत

यूवान एविस हिन्दुस्तान के जाने-माने लेखक, शिक्षाविद् और एक्टिविस्ट हैं। उनकी किताब *Intertidal: A Coast & Marsh Diary* चेन्नई के समुद्र-तटीय ईकोसिस्टम की कहानी बताती है। इस किताब में उन्होंने चेन्नई की सुमद्र तटीय ज़मीन और आसपास के दलदली और कछारी इलाकों पर गहरी नज़र डाली। यूवान के लिखने में सबसे अव्वल हमारे और हमारे इर्द-गिर्द की 'गैर-इन्सानी हस्तियों' के बारीक रिश्तों की तस्वीर निकलती है। वो अपने लेखन से हमें दोबारा प्रकृति के ताने-बाने में पिरो देते हैं और हमें याद दिलाते हैं कि महज़ जीने के लिए बाकी जीवों पर हम कितने निर्भर हैं। इस किताब को सन् 2024 में एक महत्वपूर्ण पुरस्कार मिला।

इत्तिफाक से पिछले साल ग्वालियर में मैं और यूवान मिले और हमारी गुफ्तगू हुई। हमारी बात इधर-उधर घूमती हुई अलग-अलग विषयों को छूती है। उनकी अगली किताब, कीड़े-मकोड़ों का दुनिया में मकाम, और आखिर आज के दौर में नेचर राइटिंग की अहमियत, पर केन्द्रित है। यही सवालिया बातचीत जिसमें युवान मेरे सवालों का जवाब देंगे, आपके लिए नीचे पेश है।

सवाल: तो यूवान, एक बुनियादी सवाल से शुरू करते हैं। आप कीड़े-मकोड़ों के बारे में क्यों लिखने लगे? इसकी शुरुआत कैसे हुई? आम तौर पर लोग कीड़े-मकोड़ों को नज़रअन्दाज़ ही नहीं करते बल्कि उनको अक्सर मारते हैं।

जवाब: जब मैं पन्द्रह या सोलह साल का था, मुझे एहसास होने लगा कि मुझे लिखना है। और मुझे याद है कि जब मैं एम. कृष्णन या रंजीत लाल या रॉबर्ट मॅकफार्लेन को पढ़ता था तो सिर्फ इस पढ़ने से मेरे लिए एक पूरी नई दुनिया खुल जाती थी। लिखना एक ऐसी गतिविधि है जो किसी

* *Godrej Literature Live Non-fiction Book of the Year Award,* 2024

असम्भव चीज़ के होने को मुमकिन बना सकती है। खास तौर से नेचर राइटिंग में, आप एक जगह के बारे में लिखते हैं जहाँ लोग बहुत बार जा चुके हैं। उसमें आप एक-दो नए नज़रिए डाल देते हैं और फौरन उस जगह का अनुभव बिलकुल बदल जाता है। चुनांचे, मुझे लिखना एक सम्भावनाशील गतिविधि लगती है, जो ओझल को ज़ाहिर बना सकती है और बेज़बान को आवाज़ दे सकती है। मेरे लिए यह लिखने की सबसे दिलचस्प बातों में से है। यही मुझे लिखने की ओर आकर्षित करती है। चाहे कीड़े-मकोड़े हों, या जानवर हों, या लैंडस्केप हो।

सवाल: हाँ, पढ़ने-लिखने से हमारी कल्पना विस्तृत हो सकती है, शायद ज़बानी कहानी सुनने से भी ज़्यादा। कोई बोलते हुए कितनी तफसील में जा सकता है। लिखने से हम अपने बेतरतीब एहसासों पर विचार करके उनको नए सिरे से ढाल सकते हैं।

जवाब: मैं यह नहीं कह रहा कि और तरह की अभिव्यक्ति लिखने से कमतर है। रूबरू हाज़िर होकर कहानी कहने और सुनने का अपना मज़ा है। लेकिन, लिखने से सरल खयालों को विस्तार दिया जा सकता है, और इनको फैलाकर पेचीदा भी बनाया जा सकता है।

सवाल: तो आप यह कह रहे हैं कि आपको इन बेज़बान हस्तियों की कहानियाँ सुनानी थीं?

जवाब: बेज़बान या शायद जिनकी आवाज़ नकार दी गई है। मसलन, मेरी नई किताब *Intertidal...* चेन्नई की बुनयादी प्राकृतिक प्रक्रियाओं के बारे में है, जैसे तटीय बहाव (यह समुद्र तट के किनारे तलछट के परिवहन की प्रक्रिया है, जो लहरों और हवाओं की गति से प्रभावित होती है) या तट के समानान्तर बहने वाली धाराएँ, जो हमारी नज़रों के ठीक सामने होती हैं, लेकिन हमें उनकी कोई कदर नहीं होती। ये प्रक्रियाएँ किसी भी तटीय शहर के जीवन के हर पहलू को तय करती हैं और ऐसा कोई दिन नहीं होता जब हम इनसे मुतासिर नहीं होते। लेकिन ये पूरी तरह से हमारे रोज़मर्रा के जीवन से गायब हैं। क्या आपने कभी सोचा है, हमारे रेतीले तट कैसे बनते हैं? नदियाँ अपने साथ गाद लेकर आती हैं। तट के समानान्तर बहने वाली धाराएँ इस गाद को फैलाकर रेतीले तट बनाती हैं। ये धाराएँ रेतीले तटों को हमेशा थोड़ा-थोड़ा खिसकाती रहती हैं। ये रेतीले तट भी 'मध्यम बहने वाली नदियों' जैसे होते हैं। चुनांचे, मैं सिर्फ जीव-जन्तुओं के बारे में नहीं लिखता, भूदृश्य में लगातार हो रही ज़िन्दा हलचलों को दर्ज़ करने की भी कोशिश करता हूँ।

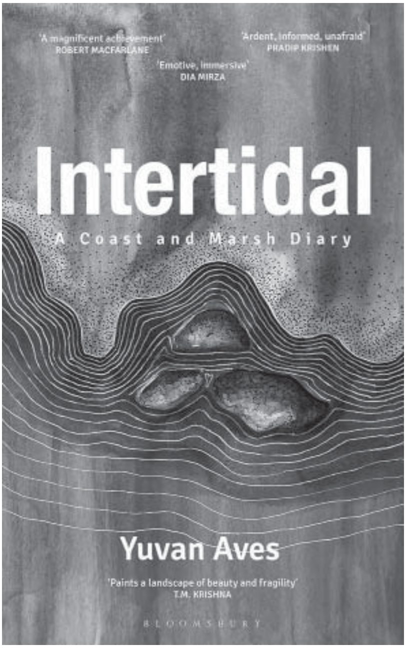

सवाल: ठीक है, वापिस कीड़े-मकोड़ों पर आते हैं। यह विषय बड़ा 'हट-के' है। आपने कीड़े-मकोड़ों के बारे में सीखना कैसे शुरू किया? आम तौर पर ये नज़रों से छुपे रहते हैं। बमुश्किल दिमाग में कैद होते हैं। कीड़े-मकोड़ों का जीवन बड़ा ओझल-सा होता है, वो दिखते ही गायब हो जाते हैं। उनको तफ्सील से देखना दुश्वार होता है। तो आपने इन पुर-पेच हस्तियों के बारे में जानना कहाँ से शुरू किया?

जवाब: लोगों का कीड़ों की दुनिया में दाखिला अमूमन तितलियों के ज़रिए होता है। मेरा भी ऐसे ही हुआ था। जब मैं 18-19 साल का था, तो तितलियों और उनकी दुनिया पर फिदा हो गया। मैं उनके बारे में सब कुछ जानना चाहता था। वो अचानक क्यों दिखती हैं और फिर कहाँ चली जाती हैं। वो कब आती हैं और कब जाती हैं। उनका पसन्दीदा घर और उनके 'मेज़बान पौधे' कौन-से होते हैं। चुनांचे, मैं उनके बारे में सब कुछ जानना चाहता था। यह मेरे लिए एक तिलिस्मी एहसास था। प्राचीन यूनानी या वैदिक वर्गीकरण प्रणाली में कीड़े-मकोड़े जीवजगत के सबसे निचले पायदान पर माने जाते हैं। इस वर्गीकरण में आदमी सबसे ऊपर, फिर स्तनपाई, और फिर सबसे नीचे पेड़-पौधे होते हैं। चलते-फिरते जीवों में कीड़े सबसे नीचे होते हैं, महज़ वनस्पति के ऊपर। लेकिन कीड़ों के जीवन का तिलिस्म हमसे पोशीदा बना रहता है। अलबत्ता जब आप उनपर गौर करने लगते हैं, तो आपको उनकी दुनिया की झलक मिलने लगती है।

बस, देखिए तितलियों की दुनिया कितनी रंगीन और चमकदार होती है। उनके पास तकरीबन 16,000 सूँघने के रिसेप्टर होते हैं! और इन्सान के पास सिर्फ 400 होते हैं! हमसे कितना गुना ज़्यादा महसूस करना सम्भव होगा उनके लिए। अब अगर हम इतनी सारी बूओं का हिसाब करें, तो वो

दर्ज़े में हमसे कितने ऊपर हो जाएँगे। इसीलिए मैं इनकी तरफ आकर्षित हुआ चूँकि इनके ज़रिए हमारी आँखों के सामने बिलकुल ही अलग एहसास की खिड़कियाँ खुल सकती हैं और महाब्रह्माण का रहस्य यहीं धरती पर मिल सकता है। सिर्फ गौर से देखने और सुनने से आपको इस 'एकाधिक-दुनिया' यानी 'यूनिवर्स' बरक्स 'मल्टीवर्स' की एक झिलमिल झलक मिल सकती है।

तो पहले मैंने तितलियों के बारे में सीखा और फिर व्याध पतंगों या हेलीकॉप्टर (ड्रैगनफ्लाई) के बारे में। मैं परागण करने वाले कीड़े-मकोड़ों को बहुत पसन्द करता हूँ क्योंकि वो हमारे लिए एक बेहद बुनियादी काम करते हैं। इसी की वजह से हम जी पाए और इन्सान बनकर विकसित हो पाए। लेकिन हमारी साधारण समझ में इस तथ्य की कोई जगह नहीं है। यूरोप में खतरनाक नियोनिकोटिनोइड (neonicotinoid) कीटनाशक पर रोक लगी हुई है। इनपर रोक लगवाने दस लाख लोग जमा हुए और उन्होंने मुहिम चलाई। लेकिन हमारे यहाँ फिलहाल इस पर किसी का ध्यान नहीं है। जी हाँ, कीड़े-मकोड़े हमारे लिए निहायत ज़रूरी हैं लेकिन हम इनको बिलकुल बेमतलब समझते हैं।

सवाल: तो ये कीटनाशक अभी भी यहाँ इस्तेमाल होते हैं?

जवाब: जी हाँ, बिलकुल। अभी-भी बहुत सारे नियोनिकोटिनोइड कीटनाशक बहुत इस्तेमाल हो रहे हैं। बल्कि मज़े की बात तो यह है कि यूरोपीय कृषि रसायन उद्योग यहाँ हिन्दुस्तान आकर इनको बेचता है। Thiamethoxam, Imida, Roflid — ये तीन अक्सर मिलते हैं। यहाँ हालात बहुत बुरे हैं और सच पूछो तो मधुमक्खी या ततैया के हक के लिए आवाज़ कभी-न-कभी उठानी होगी।

सवाल: अच्छा फर्ज़ करें, मुझे या किसी और को, तितलियों और ड्रैगनफ्लाई के बारे में सीखना हो, तो आप हमें क्या सलाह देंगे? आप कीड़े-मकोड़ों के साथ बहुत सारा वक्त बिताते हैं, आप उनके बेहद करीब जाकर बहुत बारीकी से देखते हैं और उनके जीवन को समझते हैं। साथ ही, आपका लेखन वैज्ञानिक सोच से भी बहुत प्रभावित होता है। तो हम जैसे नए लोग इन रहस्यमई जीवों के बारे में सीखना कैसे शुरू करें?

जवाब: ऐसा है कि अच्छे किस्से लोगों को दिलकश लगते हैं। कहानियाँ तो काल्पनिक होती हैं। वास्तविक जीवन में कहानियाँ शामिल नहीं होतीं। हकीकी ज़िन्दगी में सब कुछ बेतरतीब और बिखरा-बिखरा होता है। कहानियाँ इस बिखराव को सिलसिलेवार बना देती हैं। वो मुक्तलिफ

घटनाओं को ऐसे जोड़ती हैं कि उनमें मानी पैदा हो जाए। तो आप लिखते हुए बेतरतीब वास्तविकताओं को ऐसे दायरे में लाकर पिरोते हैं कि वो पुरकशिश कहानियाँ बन जाएँ। मिसाल के तौर पर, जब मैं बच्चों को कीड़े-मकोड़ों के बारे में बताने सैर पर ले जाता हूँ, तो मैं किस्से-कहानियों से तैयारी करता हूँ। जैसे, इस जगह पर यह कहानी सुनाऊँगा, उस जगह पर वो कहानी सुनाऊँगा, वगैरह-वगैरह। कुछ कहानियाँ बच्चों को अच्छी लगेंगी, और कुछ शायद उनको न भाएँ। प्रकृति में दिलचस्पी बढ़ाने के लिए कहानियाँ एक ज़ोरदार औज़ार हैं। मेरी कोशिश है कि अच्छी, मानीखेज़ कहानियों के नज़रिए से लोग दुनिया को देखें और समझें। जो कहानियाँ हमने सुनी हैं, उन्हीं के हिसाब से हम किसी चीज़ को 'बेहतर' या 'कमतर', या 'अच्छा' या 'बुरा' करार देते हैं। हम इस 'कहानी-करण' या कहानी बनने की प्रक्रिया से हकीकत को समझते हैं, उसमें शामिल होते हैं और शिरकत करते हैं। इन्हीं पुरानी कहानियों को नए अन्दाज़ में कहकर पुराने दिमागी ढाँचों को अलग करके हम इस धरती की कहानी में बाकी जीवों को अपना सह-भागी बना सकते हैं। तो आखिर आपके सवाल का जवाब दे ही देता हूँ। कीड़ों की कहानियों के ज़रिए आप उनके बारे में सीखना शुरू कर सकते हैं।

सवाल: इतने सारे कीड़ों के इतने सारे नाम! क्या सबके नाम जानना ज़रूरी है?

जवाब: जी, नाम जानना अहमियत रखता है। जब हम किसी चीज़ का नाम जानते हैं तो वो खूँटे की तरह दिमाग में कस जाता है। आजकल इस पर काफी बहस चल रही है। लेकिन सिर्फ नाम जानने पर हम रुक नहीं सकते। अगर आप किसी चीज़ का नाम नहीं जानते तो उसपर अपनी नज़र डालना और उसको बाकी दुनिया की बेतरतीबी से अलग करना बहुत मुश्किल हो जाता है। मगर हम यहाँ रुक नहीं सकते। किसी कीड़े को पहचानने के बाद हम उसका और भी गहरा अध्ययन कर सकते हैं। चूँकि मैं टीचर हूँ, मैं हमेशा यह करने की कोशिश करता हूँ। हम वो कौन-कौन सी चीज़ें कर सकते हैं जिनसे प्रकृति से हमारा तार जुड़ जाए। मैं इस चीज़ के बारे में मुसलसल सोचता रहता हूँ। बल्कि कुछ मिथक भी हमें इन्सानी कल्पना में कीड़े-मकोड़ों का मकाम बताते हैं। तो ये कुछ रास्ते हैं जिनसे हम कीड़े-मकोड़ों की दुनिया में दाखिल हो सकते हैं।

सवाल: मैं कुछ लोगों को जानता हूँ जो प्रकृति प्रेमी हैं और बहुत संवेदनशील हैं, लेकिन वे फिर भी कीड़ों से डरते हैं, या उन्हें घिन आती है। इसका क्या किया जा सकता है?

जवाब: कुछ ही दिन पहले मैं अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी के बैंगलोर कैम्पस में था। हम चट्टानोंवाली मधुमक्खी के कुछ बड़े-बड़े छत्ते देख रहे थे। हम उनकी अलग-अलग गतिविधियों की बातें कर रहे थे। वो कैसे छत्ते बनाती हैं और कैसे एक-दूसरे को रासायनिक सन्देश देती हैं। फिर हमने रुककर सबसे पूछा कि आपको क्या एहसास होता है जब आप कीड़ों के बारे में सोचते हैं। किसी ने कहा कि कीड़ा मतलब चींटी। किसी ने कहा कि कीड़ा मतलब कॉकरोच। किसी और ने कहा कि कीड़ा मतलब कुछ खूबसूरत चीज़ जैसे तितली या जुगनू। ज़्यादातर हम जब कीड़ों के बारे में सोचते हैं तो लोगों को डर, घिन और दहशत महसूस होती है। हमने इसके बारे में बातचीत की और मैंने उनसे पूछा, "क्या आपने सोचा है कि आपको यह एहसास क्यों होते है? क्या आप मधुमक्खी के डंक का शिकार हुए हैं? नहीं। तो फिर आप क्यों डर रहे हैं?"

इन भावनाओं को जाँचना, उनके पीछे के कारण को समझना बहुत ज़रूरी है क्योंकि यही मालूम होता है कि ये सारा कुछ सामाजिक सोच का नतीजा है, यानी हमारे समाज ने इसे गढ़ा है और हमें यह सब डर-नफरत सिखाई है। फिर हम विद्यार्थियों के साथ सैर के दौरान इन मधुमक्खियों की कहानियों को दोबारा सुनते हैं। हम देखते हैं कि वे कैसे अपने खाने को खोजती हैं। वो अपना 'वैगल नृत्य' कैसे करती हैं। 'वैगल नृत्य' के ज़रिए मधुमक्खियाँ एक-दूसरे के साथ बहुत कुछ जानकारी साझा करती हैं, जैसे खाना कितनी दूर मिलेगा, कैसे बुज़ुर्ग मधुमक्खी पंचायत बिठाकर फैसला लेती हैं कि कब और कहाँ प्रवास करना है, और नया छत्ता कहाँ बनाना है आदि। ये सब बहुत लोकतांत्रिक तरीके से किया जाता है। थॉमस सीली ने अपनी किताब *मधुमक्खी का लोकतंत्र (Honeybee Democracy)* में इसके बारे में लिखा है।

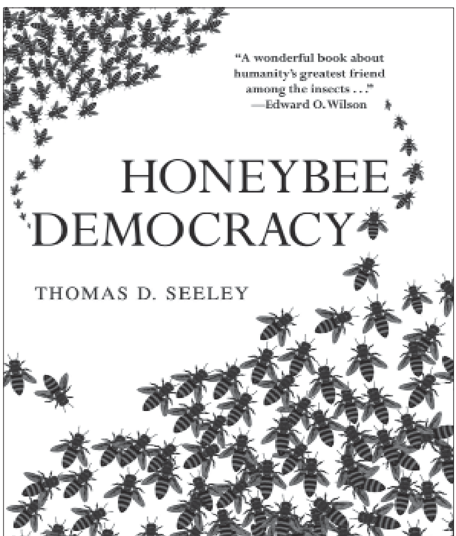

अपनी 'नेचर वॉक्स' या सैर

के ज़रिए हम मधुमक्खियों की कहानी का 'पुन:निर्माण' करते हैं और दोबारा समझते हैं कि ये हमारी ज़िन्दगी में क्या मायने रखती हैं। आखिर, मैं ग्रुप से पूछता हूँ, "अब आपको इनके प्रति क्या महसूस होता है?" अक्सर वे जवाब देते हैं कि "अब मुझे इनके बारे में जिज्ञासा या दिलचस्पी हो रही है।" एक बच्चे ने कहा कि अब उसको इनके प्रति आभार महसूस होता है क्योंकि उनकी मदद से ही हमारा खाना पैदा होता है। सैर खत्म होते-होते बच्चों की भावनाएँ बदल जाती हैं। तो अब आपके सवाल पर वापिस आते हैं। लोगों को कीड़ों से घिन लगती है क्योंकि यह सब महज़ इन्सानों के बनाए नज़रिए हैं। यानी सामाजिक निर्माण हैं जिन्हें तोड़ा और फिर नए सिरे से गढ़ा जा सकता है।

सवाल: क्या आपको मधुमक्खियों और उनके पराग को फैलाने (परागण) के बारे में कोई किस्से-कहानियाँ मिली हैं?

जवाब: जी हाँ, लेकिन इस पर बहुत कम बातचीत होती है। 'ब्रह्मारी' नाम की एक देवी होती है जो अब हिन्दू धर्म के देवी-देवताओं का हिस्सा बना दी गई है। यह देवी एक मधुमक्खी का रूप लेती है और इससे अच्छी फसल का वरदान मिलता है। यहाँ मधुमक्खियों की अहमियत की एक झलक मिलती है। पहले से ही हर ज़मीन से जुड़े समाज को साफ मालूम रहा है कि ये पिद्दी-सी हस्तियाँ हमारे लिए बहुत ज़रूरी काम करती हैं। लेकिन हमें आज के आधुनिक दौर के लिए भी कहानियाँ चाहिएँ। मैं सौ साल पुरानी कहानियाँ अब नहीं सुना सकता। बिलकुल नहीं। मुझे तो *महाभारत* भी – ज़्यादा-से-ज़्यादा – अप्रचलित लगती है। इसके साथ-साथ कुछ बहुत अच्छे प्रयोग किए गए हैं जिनमें छोटे-छोटे बच्चे – जो सिर्फ तीन-चार महीने के होंगे – मकड़ियों या साँप को पकड़कर उनसे खेल रहे हैं। आजकल इंस्टाग्राम पर ऐसी बहुत सारी रील बन रही हैं। चुनांचे, यह कोई पैदाइशी या आनुवंशिक स्थिति नहीं है। ये हमारी आदतों और रीति-रिवाज़ से पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलती आ रही हैं। कोई भी बच्चा मकड़ियों के डर को लेकर पैदा नहीं होता। एक वीडियो में एक छोटे-से बच्चे के सामने एक बड़ा-सा तरनतुला मकड़ा (जो दुनिया के सबसे ज़हरीले होते हैं) रखा जाता है और वो फौरन उसको पकड़ने लपकता है। बताइए, कीड़ों के प्रति भय में 'अरकनोफोबिआ' या मकड़ियों का खासा भय सबसे ज़्यादा देखने मिलता है। अब इसकी ज़हनी रचना कैसे हुई होगी? यह डर बहुत ज़्यादा बारीकी से हमें सिखाया जाता है, इशारों से फिल्मों, किताबों और बातचीत में।

सवाल: हाँ, बिलकुल, बल्कि हिन्दी में तो अक्सर साँप को भी 'कीड़ा' कहते हैं।

जवाब: ये शायद बहस का विषय हो सकता है। मैंने अपनी किताब में समझने की कोशिश की है कि हमारे प्रकृति के रिश्ते पर जाति, छुआछूत और अपवित्रता के खयाल का क्या असर पड़ता है। और साथ-ही-साथ, हमारे कीड़ों से रिश्ते पर। मिसाल के तौर पर, हिन्दू धार्मिक ग्रन्थों में *गरुड़ पुराण* में मृत्यु के बाद 'किरुमी भोजनम' नाम के एक खास किस्म के जहन्नुम का वर्णन मिलता है। इसमें आप एक कीड़ों से भरे खड्डे में पटक दिए जाते हैं जिसमें इल्लियाँ और कनखजूरे आपको धीरे-धीरे ज़िन्दा चबा डालते हैं। चुनांचे, कीड़े-मकोड़े नरक की तस्वीर दर्शाते हैं। प्राचीन ग्रन्थों-किताबों में ऐसे बयान इतने ज़्यादा मिलते हैं कि आप कीड़ों को हकीकत में भी ऐसे ही देखने लगेंगे। इसकी एक और मिसाल मिलती है जब नेतन्याहू बोलते हैं कि हम फिलिस्तीनियों को कीड़ों की तरह कुचल देंगे।

सवाल: और इस मुल्क में भी किसी ने 'दीमक' शब्द का ऐसे इस्तेमाल किया है। यह मुझे कार्लो गिंज़बर्ग की किताब *द चीज़ एंड द वर्म्ज़* की याद दिला रही है। यह सत्रवीं सदी के एक इतालवी 'मिलर' या चक्कीवाले की कहानी बताती है। उसका नाम मेनोकिओ था और वो यह मानने लगा था कि ये दुनिया वैसी ही प्रक्रियाओं से बनी होगी जो पनीर बनाने की प्रक्रिया में होती हैं। वो यह मानने लगा कि सृष्टि का निर्माण किण्वन या खमीर उठाने की प्रक्रिया के समान हुआ होगा। इसी वजह से रोमन कैथोलिक चर्च ने उसको सज़ा दी थी। ऐसे ही, खाद बनाने की प्रक्रिया में भी जिस तरह से मुर्दा सामग्री, दोबारा ज़िन्दा उपजाऊ खाद बन जाती है, इसमें भी हमें सृष्टि के निर्माण का बिम्ब मिलता है। अगर हम सिर्फ उनकी संख्या और वज़न पर भी जाएँ, तो ज़ाहिर है कि कीड़े-मकोड़ों के पास इस धरती पर हमसे बहुत ज़्यादा ताकत है। खैर, यह बताइए कि हमारी लोक-कथाओं में क्या आपको कीड़ों से जुड़ी कोई मज़ेदार कहानियाँ मिली हैं?

जवाब: राजस्थान में हर्षा नाम के एक नेचर गाइड ने मुझे 'कुम्हार ततैया' (पॉटर वास्प) के बारे में एक बड़ा दिलचस्प किस्सा सुनाया। यह उसने अपनी दादी से सुना था। कुम्हार ततैया ज़्यादातर 'जिओमीटर पतंगों' (पतंगों की एक नस्ल) की इल्ली खाती हैं। वो चिकनी मिट्टी इकट्ठा करती हैं और किसी कोने में एक कलशाकार घर बनाती हैं। फिर शिकार की इल्लियाँ इसमें डाली जाती हैं और साथ-साथ में अन्दर अण्डे देकर उसको बन्द कर दिया जाता है। ततैया के बच्चे अण्डे से निकलकर इल्लियों को खाते हैं और रूपान्तर करके ततैया की शकल में बाहर निकल आते हैं।

अब वहाँ की रिवायत बताती है कि कुम्हार ततैया तिलिस्मी जादू जानती हैं। वो भेस बदलने वाली अय्यर या चालबाज़ होती हैं। वो इतना जादू-टोना कर चुकी हैं कि खुद अपने बच्चे नहीं पैदा कर पातीं, लेकिन दूसरे जीवों के बच्चों को जादू से अपने में तब्दील कर लेती हैं। चुनांचे, वो इल्ली को दबोचकर उनके कानों में मंत्र पढ़ती हैं और उनको अपने तिलस्माती कलश में छुपा देती हैं। कुछ दिन बाद जब वह मंत्र सिद्ध हो जाता है तो वही इल्ली काया पलट कर ततैया बनकर कलश से बाहर आ जाती है!

सवाल: वाह, क्या बात है! और बताइए।

जवाब: क्या कीड़े-मकोड़े हमारे जज़्बातों या चेतना को और गहरा करते हैं? मैं इसपर भी शोध कर रहा हूँ। मनोविज्ञान में इसको 'psycho-synthesis' कहते हैं। हमारी हस्ती मुकम्मल महसूस करना चाहती है, नहीं तो हमें अधूरापन महसूस होता है और यह तकलीफदेह होता है। हमारी हस्ती के कुछ हिस्से ऐसे होते हैं जिनपर सिर्फ दूसरे जीवों का होना ही रोशनी डाल सकता है। दूसरे जीवों की हस्ती या जीवनशैली से हमें अपने बारे में सीखने को मिलता है। मिसाल के तौर पर, आश्चर्य का भाव। हमारे भीतर आश्चर्य का एहसास पैदा करने में तितलियों की बहुत बड़ी भूमिका रही है। और कितनी सारी शायरी और कविताएँ इन तितलियों से सींची गई हैं। मैं ऐसी चीज़ों पर गौर कर रहा हूँ कि अगर तितलियाँ नहीं होतीं तो क्या हम चकित होने के भाव को ऐसे महसूस कर पाते? चुनांचे, मुझे लगता है कि जैव विविधता के घटने के साथ-साथ हमारी चेतना को भी नुकसान पहुँचता है। हम भाँति-भाँति के एहसासों और मानी को खो रहे हैं।

एक और चीज़, हाल में मैं शहद इकट्ठा करने वाले कुरुम्बा समाज की कहावतें और पहेलियाँ पढ़ रहा था। उनकी एक पहेली है जिसमें वे कहते हैं कि 'गाय के पीछे दौड़ो, उनके थनों को दबाओ, और फिर दूध बिन गैय्या वापिस लाओ'। यह पहेली मधुमक्खी और शहद इकट्ठा करने के बारे में है।

सवाल: अचानक मुझे कुछ तेलुगु के पद याद आ रहे हैं। वो गूलर के पेड़ (*Ficus racemosa*) के बारे में है और उसमें कीड़े-मकोड़ों का हवाला है। ये पद कहते हैं: गूलर के फल को देखो तो, बाहर से चमकता, आकर्षित करता, जब खोल के अन्दर झाँको तो, कीड़ों-केंचुओं से भरा निकलता!' वे गूलर के फल से बताते हैं कि दिखावे पर मत जाओ, दिखावा धोखा दे सकता है।

जवाब: वेल्लापुथुर के एक किसान ने मुझे 'क्रिमसन रोज़' तितली के बारे में एक और कहानी सुनाई। DMK पार्टी के झण्डे की तरह क्रिमसन रोज़

तितली काली और लाल रंग की होती हैं। अब होता क्या है कि हर साल बारिश आने से पहले, पश्चिमी घाट की बारिश से बचने के लिए सैंकड़ों तितलियाँ पूरब की ओर प्रवास करती हैं। तो जब भी क्रिमसन रोज़ के झुण्ड बड़ी संख्या में प्रवास करते दिखते हैं तो लोग कहते हैं कि DMK पार्टी चुनाव जीतेगी।

सवाल: आपने अपनी अगली किताब का बड़ा दिलचस्प नाम रखा है। यह क्यों और कैसे चुना?

जवाब: किताब का नाम *इन्सेंडेन्स* है। थॉमस बेरी ने अपनी किताब *ड्रीम ऑफ द अर्थ* में इस शब्द को गढ़ा था। इसमें वे कहते हैं कि हमें अपनी आस्था को किसी बिला-वजूद की शय में रखने की बजाय इस जीती-जागती, ज़िन्दा दुनिया में रखना चाहिए। ज़्यादातर धर्म इसकी उल्टी बात कहते हैं। थॉमस बेरी ने इस दौर के लिए यह शब्द इजाद किया था। अक्सर आध्यात्मिक परम्पराओं में हम मोक्ष की बात करते हैं। इस शरीर और मन से मोक्ष पाना। थॉमस बेरी ने 'इन्सेंडेन्स' की बात की - दुनिया से मोक्ष पाने की बजाय, उसके भीतर घुस जाओ। उन्होंने उसके मर्म में पैठने की बात की। इन्सेंडेन्स 'मोक्ष' या 'ट्रांसेंडेन्स' का उल्टा है। उसका मतलब मर्म में पैठ जाना है। मेरे लिए यह दुनिया के छोटे नामालूम बाशिन्दों पर शिद्दत से गौर फरमाने का काम है। इन्सेंडेन्स वो भी है जो कीड़े-मकोड़े खुद करते हैं - पेड़ों की छाल, या किसी छेद या तंग दरार में घुस जाना। चीज़ों के केन्द्र तक पहुँचने की कोशिश करना, इस अर्थ में 'इन्सेंडेन्स' शब्द शायराना भी है और रूहानी भी।

फज़ल: हम सब इस किताब के इन्तज़ार में हैं। बहुत शुक्रिया आपका।

यूवान: आपका भी।

यूवान एविस: हिन्दुस्तान के लेखक, प्रकृतिवादी, शिक्षक और एक्टिविस्ट। वर्तमान में, अबेकस मॉण्टेसरी स्कूल में 'फार्म, पर्यावरण और समाज' कार्यक्रम का समन्वय करते हैं। उन्होंने दो किताबें और कई लेख लिखे हैं। शायद सैंक्चुअरी के अब तक के सबसे कम उम्र के ग्रीन टीचर पुरस्कार प्राप्तकर्ता, युवान सबसे बेहतरीन, सबसे करिश्माई प्रकृति के शिक्षाविदों में से एक हैं। *बेल के पौधे और लाइम तितली की इल्लियाँ* लेख के लिए यूवान को 2017 में मद्रास नेचुरलिस्ट्स सोसाइटी से एम. कृष्णन नेचर राइटिंग अवॉर्ड मिला था। यूवान का काम उनके इंस्टाग्राम खाते a_naturalists_column पर देखा जा सकता है।

फज़ल रशीद: ज़्यादातर बागबानी और पेड़-पौधों से जुड़े कामों में मसरूफ रहते हैं। भोपाल में निवास। सम्पर्क - fazalrashid@gmail.com

यह लेख *कथादेश* पत्रिका के अंक - जुलाई 2025 से साभार।

जिन्होंने हमें सिखाया कि पत्थर बोल सकते हैं

कुछ यादें, कुछ विरासत

परविंदर सिंह

जब कोई विद्वान शिक्षक या वक्ता लेक्चर हॉल में दाखिल होता है तो हॉल में एक खास तरह का सन्नाटा छा जाता है। यह किसी डर से छाई हुई खामोशी नहीं होती थी, बल्कि ऐसी खामोशी होती थी जो मानो जानती हो कि आज कुछ महत्वपूर्ण सीखने को मिलने वाला है। प्रोफेसर शीरीन रत्नागर जैसे ही लेक्चर हॉल में प्रवेश करती थीं, पूरा वातावरण उसी शान्त और उत्सुक प्रतीक्षा से भर जाता था। 25 मई, 2026 को मुम्बई में 82 साल की उम्र में उनका निधन हुआ, इसके साथ ही भारत ने एक मशहूर पुरातत्वविज्ञानी (आर्कियोलॉजिस्ट) खो दिया।

दिल्ली के जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के सेंटर फॉर हिस्टोरिकल स्टडीज़ में मुझे अपने मास्टर प्रोग्राम के दौरान शीरीन का विद्यार्थी बनने का मौका मिला। शीरीन सिर्फ आर्कियोलॉजी नहीं पढ़ाती थीं, बल्कि उन्होंने हमें दुनिया को देखने का एक नया नज़रिया भी दिया। उन्होंने हमें धैर्य, लगन और पुरानी मान्यताओं को बिना किसी झिझक के चुनौती देने का साहस भी सिखाया।

शीरीन नर्मदा बॉयज़ हॉस्टल के करीब एक फैकल्टी हाउस में रहती थीं। उन्हें घर और सेंटर फॉर हिस्टोरिकल स्टडीज़ के बीच के रास्ते पर एक हाथ में किताबें दबाए, खयालों में खोए हुए टहलते देखना बेहद सामान्य था। जिन दिनों सेमिनार कुछ लम्बे चलते थे, हम लोग उनके पीछे-पीछे पास के पॉपुलर कैफेटेरिया तक चले जाते थे। वहाँ यह एहसास हुआ कि शीरीन के साथ अनौपचारिक बातचीत भी उतनी ही सीखने लायक होती थी जितनी लेक्चर हॉल में कही गई कोई भी बात।

शीरीन ने अपनी ज़िन्दगी प्राचीन काल की धूल-मिट्टी में बिताने का फैसला बचपन में नहीं लिया था। उनका जन्म 1944 में मुम्बई में एक जाने-माने पारसी परिवार में हुआ। शीरीन ने सेंट ज़ेवियर्स कॉलेज में पढ़ाई करने के बाद, पुणे के डेक्कन कॉलेज (पोस्ट ग्रेजुएट एण्ड रिसर्च इंस्टीट्यूट) में दाखिला लिया। इसके बाद उन्होंने यूनिवर्सिटी कॉलेज, लंदन में आगे की पढ़ाई की। यहाँ पढ़ाई करते हुए शीरीन ने 'मेसोपोटामियन आर्कियोलॉजी' में स्पेशलाइज़ेशन किया। यह एक ऐसा काम था जिसने उन्हें समकालीन लेकिन एक-दूसरे से दूर के भौगोलिक इलाकों के बीच तुलना करने का नज़रिया दिया, जो उनकी पूरी अकादमिक ज़िन्दगी की पहचान बन गया।

शीरीन कभी भी सभ्यताओं की शान में बड़े-बड़े कथानक गढ़ने की कोशिश नहीं करती थीं बल्कि उनका रुझान अक्सर वास्तविक और साबित किए जा सकने वाले पहलुओं पर रहता था, मसलन, लोगों ने किस चीज़ का निर्माण किया, किस चीज़ का व्यापार किया और किस सामग्री को खारिज किया। आप कह सकते हैं कि इस रुझान का सम्बन्ध जिज्ञासाओं से था - यह जानने की इच्छा कि यहाँ कौन रहता था, कैसे रहता था और किस पर्यावरणीय कीमत पर रहता था।

शीरीन के बौद्धिक जीवन में एक गहरा अन्तर्विरोध या वैचारिक मतभेद हमेशा बना रहा। यह मतभेद सिद्धान्त को देखने के उनके नज़रिए को लेकर था। इस वजह से उनका मतभेद इतिहासकारों की उस पूरी पीढ़ी एवं जमात से भी रहा जिसका नेतृत्व रोमिला थापर कर रही थीं। हालाँकि, इन दोनों ने मिलकर भारतीय इतिहास को लिखने और समझने का तरीका बदल दिया था। इन दोनों ने भारत के इतिहास को औपनिवेशिक चश्मे से देखने से इनकार किया और साथ ही, राष्ट्रवाद के नाम पर इतिहास के सरलीकरण की कोशिशों को भी खारिज किया। इसके बावजूद इतिहास को समझने का दोनों का तरीका एक-दूसरे से बहुत अलग था। यही वैचारिक मतभेद इतिहास जगत के लिए काफी

फायदेमन्द और रचनात्मक साबित हुआ।

रोमिला थापर, प्राचीन भारत के इतिहास की एक प्रमुख इतिहासकार थीं। उन्होंने लिखित ग्रन्थों, सामाजिक व्यवस्था और राजनीति के विशाल फलक पर बड़े पैमाने पर काम किया है। रोमिला ने इतिहास के इस लम्बे दौर को समझने के लिए मार्क्सवाद, संरचना, तुलना जैसे सैद्धान्तिक पक्षों का सहारा लिया। इसके विपरीत, शीरीन उन व्यापक सिद्धान्तों को सदैव सन्देह की निगाह से देखती थीं जो ठोस सबूतों से भी आगे निकल जाते थे। उनका मानना था कि पुरातत्व विज्ञान में ज़मीन से निकले अवशेषों और सबूतों के आधार पर निष्कर्ष निकाले जाने चाहिए। आप पहले से ही कोई निष्कर्ष तय करके, फिर उसे साबित करने के लिए मुहरों (सील), बर्तन-भांडों के टुकड़े और अन्य अवशेषों की तलाश नहीं कर सकते।

जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय में पढ़ाते समय शीरीन इस बात को भलीभाँति समझती थीं कि विद्यार्थियों को सबूतों को परखने और उन पर सवाल उठाने के लिए एक वैचारिक ढाँचे या कहें, थ्योरी की ज़रूरत होगी। क्योंकि बिना सिद्धान्त के तथ्य बेजान होते हैं। इसलिए अपने खास अन्दाज़ में उन्होंने कठिन डगर को चुना। शीरीन ने विद्यार्थियों को सिद्धान्त और सबूत, दोनों ही सिखाए। एक तरफ, उन्होंने विद्यार्थियों को गॉर्डन चाइल्ड की किताब पढ़ने के लिए प्रेरित किया ताकि वे राज्य बनने और नगरों के उदय से सम्बन्धित बहस को बेहतर तरीके से समझ सकें। साथ ही, यह जान सकें कि 'कांस्य युग' सिर्फ एक कालखण्ड का नामकरण मात्र नहीं है, अपितु एक सैद्धान्तिक अवधारणा है। इसके बाद वे विद्यार्थियों को पुनः प्राचीन बर्तन-भांडों और मुहरों के व्यावहारिक अध्ययन की ओर लेकर आतीं और पूछतीं, क्या ये सबूत वाकई थ्यौरी की पुष्टि करते हैं। किसी एक इण्टरव्यू में शीरीन ने कहा था कि उनका मकसद इतिहास को केवल हवा-हवाई और सैद्धान्तिक बना देना नहीं था बल्कि वे इतिहास को एक ऐसा रूप देना चाहती हैं जिससे इन्सान के तौर पर हर विद्यार्थी खुद को जोड़ सके।

विद्यार्थियों की कल्पनाशीलता को जगाने के लिए कुछ ठोस और प्रत्यक्ष उदाहरणों की ज़रूरत थी। जैसे सूखे से निपटने की योजना बनाता हुआ कोई नगर, कोई एक कारीगर जो काँसा ढालना जानता है लेकिन धातु की एक बून्द भी बर्बाद करना बर्दाश्त नहीं कर सकता, किसी दूर-दराज़ के गाँव के एक मकान में दबी मिली अकीक (कार्नेलियन, रत्न पत्थर) की माला, जिसे शायद उस समय किसी कूटनीतिक भेंट के रूप में देकर दो देशों के बीच रिश्तों को मज़बूती मिली होगी।

रोमिला और शीरीन की पीढ़ी के इतिहासकारों में यही बौद्धिक साहस दिखाई देता है। वे एक ही समय में विश्लेषण के कई अलग-अलग परिप्रेक्ष्यों को साथ लेकर चलने का हौंसला रखते हैं। वो भी इस तरह कि कोई सिद्धान्त सबूतों से मिलने वाले किसी नए और चौंका देने वाले सच का रास्ता न रोक दे।

शीरीन की सन् 1981 में प्रकाशित किताब, *एंकाउन्टर्स: द वेस्टरली ट्रेड ऑफ द हड़प्पा सिविलाइज़ेशन*, ने यह साबित कर दिया कि हड़प्पा के लोग मेसोपोटामिया और फारस की खाड़ी तक फैले विशाल व्यापार का हिस्सा थे। शीरीन की बाद की किताबों – *अंडरस्टेंडिंग हड़प्पा, ट्रेडिंग एंकाउन्टर्स, हड़प्पन आर्कियोलॉजी: अर्ली स्टेट पर्सपेक्टिव* – ने सिन्धु घाटी सभ्यता को किसी दैवीय दृष्टिकोण की बजाय भौतिक स्थितियों, श्रम और वर्ग विभाजन से निर्मित जटिल नगरीय समाज के रूप में सामने लाकर पेश किया।

शीरीन के पढ़ाने के अन्दाज़ को जो बात बेमिसाल बनाती थी, वो थी ऐतिहासिक साक्ष्यों को एक जीती-जागती कहानी में तब्दील कर देने की कला। वे कक्षा में सिर्फ लेक्चर नहीं देती थीं, बल्कि शब्दों से एक जीवन्त छवि अंकित कर देती थीं। जब वे मोहनजोदड़ो का ज़िक्र करती थीं तो आपकी आँखों के सामने खुदाई से बने बेजान-बेतरतीब गड्ढों का चित्र नहीं उभरता था, बल्कि एक चहल-पहल वाली सड़क, पकी ईंटों की सौंधी खुशबू, अकीक के मनकों को तौलते सौदागर, पक्की-मज़बूत नालियों के पास से दौड़ता बच्चा – यह सब आँखों के सामने तैर जाता था। इसी तरह जब शीरीन सिन्धु सभ्यता के पतन के कारणों की तह में जाती थीं जैसे – मिट्टी का खारा होना, मेसोपोटामिया के व्यापारिक रास्तों का बन्द होना, मॉनसून का धीरे-धीरे रूठ जाना, तब उनकी आवाज़ में दर्द और भारीपन होता था। मानो वे किसी व्यक्तिगत नुकसान को महसूस कर रही हों। वे किसी सभ्यता के उत्थान या पतन को सिर्फ ऐतिहासिक घटना नहीं बल्कि उस समय के लोगों द्वारा लिए गए अनेक छोटे-बड़े फैसलों का सामूहिक परिणाम बना देती थीं। उनकी कक्षा में बैठकर कोई भी विद्यार्थी यह सोचे बगैर नहीं रह सकता था कि इतिहास सुदूर में रहने वाले अजनबियों के साथ घटी कल की दास्तान नहीं है। बल्कि वो है, जो कल हमारे साथ ही घट रहा था और आज के दौर में भी हमारे साथ ही घट रहा है।

उनका पढ़ाने का तरीका भी उनके शोध के अनुरूप था। एक बार किसी विद्यार्थी ने चकमक पत्थर (फ्लिंट) के तराशे हुए टुकड़े को पत्थर कह दिया। उन्होंने कक्षा पर एक तीखी नज़र डाली और बोलीं, “नहीं, यह पत्थर का एक औज़ार है।” इन चन्द

शब्दों में उनका पूरा नज़रिया छुपा हुआ था – चीज़ों को उनके सही नाम से पुकारो और धरती द्वारा हमें लौटाई गई हर वस्तु में निहित मानवीय उद्देश्य का सम्मान करो।

मुझे एक और किस्सा याद आता है। हमारे मास्टर्स सेमीनार के दौरान एक दोपहर, जेएनयू कैम्पस में घूम रहा एक लंगूर हमारी कक्षा के भीतर आकर बड़ी तसल्ली से सामने की कतार में बैठ गया। पूरी कक्षा जैसे थम-सी गई। खुद शीरीन एक पल के लिए रुक गईं। चश्में के पीछे उनकी आँखें फैल गईं और उनमें हैरानी का भाव साफ दिख रहा था। लेकिन अगले ही पल उन्होंने खुद को सम्भाला और अपना लेक्चर पहले की तरह ही जारी रखा। कुछ मिनटों बाद लंगूर कक्षा से बाहर चला गया। मानो जो सुना, उससे सन्तुष्ट था! बाद में, हम लोग कैफे में इस बात पर खूब ठहाके लगा रहे थे लेकिन शीरीन की प्रतिक्रिया सरल, नपी-तुली मुस्कान मात्र थी।

शीरीन को एक बात जो सबसे अलहदा बनाती थी, वह थी, अकादमिक शोध को जनजीवन और सामाजिक मुद्दों से अलग न रखने की ज़िद। अयोध्या भूमि स्वामित्व मुकदमे में एक विशेषज्ञ गवाह के रूप में उन्होंने भारतीय पुरातत्व विभाग (ए.एस.आई.) द्वारा सन् 2003 में खुदाई के तरीकों और परिणाम पर गम्भीर सवाल उठाए थे।

इसके अलावा, उन्होंने हड़प्पाकालीन स्त्री मूर्तियों को बिना ठोस आधार के मातृदेवी (मदर गॉडेस) मान लेने की प्रवृत्ति को भी चुनौती दी थी। शीरीन ने याद दिलाया कि औपनिवेशिक दौर की धारणाएँ बिना किसी जाँच-पड़ताल के भारतीय पुरातत्व के भीतर रच-बस गई हैं।

आज मैं पुरातत्व की उस कक्षा से बहुत दूर आ चुका हूँ। लेकिन शीरीन ने मुझे जो सबक सिखाए थे, वे आज भी मेरे हर काम में मेरे साथ होते हैं। उनका ही एक सबक था कि हर अवशेष चाहे वो मिट्टी के बर्तन का टुकड़ा हो, कोई तस्वीर या कुछ और, ऐसी हरेक चीज़ पर इन्सानी हाथों और फैसलों की अमिट छाप होती है।

और, कभी याद से न मिटने वाली उस दोपहर को उन्होंने मुझे सिखाया कि असल बौद्धिक निष्ठा कभी डिगती नहीं, न राजनीति के लिए, न किसी उकसावे के लिए और यकीनी तौर पर उस लंगूर के लिए भी नहीं, जो एक तपती दोपहरिया में हमारी कक्षा के भीतर आकर लेक्चर सुनने बैठ गया था।

परविंदर सिंह: पॉलिसी और डेवलपमेंट कम्युनिकेशन के एक्सपर्ट हैं।

अँग्रेज़ी से अनुवाद: माधव केलकर: *संदर्भ* पत्रिका से सम्बद्ध हैं।

यह लेख 28 मई, 2026 को *इंडियन एक्सप्रेस* अखबार में प्रकाशित परविंदर सिंह के लेख का सम्पादित अंश है।

शीरीनः सख्त अकेडमीशियन लेकिन ज़िन्दादिल इन्सान

अजय दांडेकर

मुम्बई में जन्मीं शीरीन ने शायद बहुत छोटी उम्र में ही पुरातत्व विज्ञान के ज़रिए अतीत को समझने का फैसला कर लिया था। उनके कथन के अनुसार, कक्षा नौवीं में जब उन्होंने मोर्टिमर व्हीलर की किताब *आर्कियोलॉजी फ्रॉम द अर्थ* पढ़ी, तो उनके मन में कुछ ऐसा हुआ जिसने उन्हें पुरातत्व की पढ़ाई के लिए प्रेरित किया।

एक बार तय करने के बाद उन्होंने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। उनके इस फैसले से वास्तव में भारत के आद्य इतिहास (प्रोटो-हिस्ट्री) और सिन्धु घाटी सभ्यता के अध्ययन को बहुत फायदा हुआ।

मेरे खयाल से प्रारम्भिक काँस्य युग (ब्रोंज़ एज) के ज़रिए हड़प्पा के अध्ययन में प्रवेश करना और पीएचडी के लिए इस इलाके के व्यापार को चुनना, एक महत्वपूर्ण फैसला था। हड़प्पा अध्ययन की गहरी समझ उन्हें इस विषय के अन्य विद्वानों से अलग करती है। सिन्धु और मेसोपोटामिया

की संस्कृतियों के बीच शुरुआती व्यापारिक सम्पर्कों पर उनके लेखन से यह बात स्पष्ट होती है। उनकी पहली किताब *एंकाउंटर्स, द वेस्टर्ली ट्रेड ऑफ द हड़प्पा सिविलाइज़ेशन* (सन् 1981) और *हड़प्पन आर्कियोलॉजी* (सन् 2010) लगभग तीन दशक की विद्वतापूर्ण यात्रा है।

बेशक, हड़प्पा अध्ययन में प्रमुख शोधकर्ता के रूप में उनकी एक पहचान है, लेकिन इसके अलावा भी उन्होंने कई काम किए हैं। शीरीन ने गुजरात के छोटा उदयपुर इलाके में आदिवासी समुदाय के साथ पाँच साल रहते हुए गहन शोधकार्य किया।

ऐसे ही, होशंगाबाद (मध्यप्रदेश) में स्कूली शिक्षकों को विविध प्रशिक्षणों में इतिहास पढ़ाया और हिन्दी में *भारतीय इतिहास के स्रोत* शीर्षक से एक किताब भी लिखी।* इस किताब को लिखने के लिए उन्होंने खुद हिन्दी में लिखना सीखा। इस किताब के कई अंश आज भी बहुत-से शिक्षक-प्रशिक्षणों के लिए अत्यन्त प्रासंगिक और उपयोगी हैं।

उनके व्यक्तित्व का एक और पहलू था – उनकी बेबाकी, और जिन मूल्यों पर वे यकीन रखती थीं उनके बचाव में वे पूरी तरह निडर थीं। इसकी एक बानगी देखने को मिली जब अयोध्या में ढाँचे की पुरातात्विक जाँच-पड़ताल की प्रकृति पर शीरीन ने अपने सोचे-समझे और शोध आधारित विचार कोर्ट के सामने रखे। ये विचार एक ऐसे व्यक्ति के थे जिसने समस्त सबूतों का बहुत सावधानी से अध्ययन किया था। शीरीन ने विविध तरह से हमारे संविधान के धर्मनिरपेक्ष ढाँचे का बचाव किया और पुरातत्व को साम्प्रदायिक मतभेदों से बचाने की कोशिश की।

---

* *अजय दांडेकर इस किताब के सहलेखक हैं।*

अजय दांडेकर: ग्रेटर नोएडा स्थित शिव नादर इंस्टीट्यूशन ऑफ एमिनेंस (डीम्ड टू बी यूनिवर्सिटी) के इतिहास विभाग में अध्यापन करते हैं। आप शिरीन रत्नागर के छात्र रहे हैं।

अँग्रेज़ी से अनुवाद: माधव केलकर: *संदर्भ* पत्रिका से सम्बद्ध हैं।

यह लेख 06 जून, 2026 को *इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली (ईपीडब्लू)* पत्रिका में प्रकाशित अजय दांडेकर के लेख का सम्पादित अंश है।

चित्र को पढ़ना

"एक तस्वीर हज़ार शब्दों के बराबर होती है"

यह कहावत तो आपने भी सुनी ही होगी।

इसी विषय के इर्द-गिर्द रची गई हमारी यह आगामी किताब बच्चों को चित्रों की दिलचस्प दुनिया से रूबरू होने, उन्हें पढ़ने और उनके इर्द-गिर्द बातचीत करने के मौके देती है।

माधुरी पुरंदरे के बनाए गए रंग-बिरंगे चित्रों से भरपूर इस किताब को प्री-स्कूल से लेकर माध्यमिक स्तर तक के बच्चों के साथ भाषा सीखने-सिखाने को मज़ेदार बनाने के एक साधन के तौर पर इस्तेमाल किया जा सकता है।

एकलव्य फाउंडेशन
जमनालाल बजाज परिसर, जाटखेड़ी, भोपाल - 462 026 (मप्र)
फोनः **+91 755 297 7770-71-72;** ईमेलः **pitara@eklavya.in**
www.eklavya.in | www.eklavyapitara.in

एकलव्य

बच्चे बतौर भावी नागरिक और नागरिकशास्त्र

प्रकाश कान्त

चित्र: अदिति पुतिंगे

नागरिकशास्त्र के पाठों की शुरुआत बच्चों के आसपास की दुनिया से हुई थी। परस्पर निर्भरता, ग्राम पंचायत, नगर पंचायत वगैरह! इन पाठों में दाखिल होने के पहले बच्चों ने छोटा-मोटा मैदानी काम किया था। एक तरह का सर्वे! उन्होंने गाँव की कुछ खास जानकारियाँ इकट्ठी की थीं। मसलन, गाँव में कुल कितनी किराना दुकानें हैं? पान, कपड़ा, जूते-चप्पल की दुकानों की संख्या क्या है? आटा चक्कियाँ कितनी हैं? ट्रैक्टर, मेटाडोर और ट्रक कितने हैं? असल में, उनसे इस तरह के सवालों की पूरी एक सूची बनवाई गई थी। कुछ सवाल उन्होंने ही सुझाए थे। जैसे, गाँव में कितने कुएँ-कुण्डी और हैण्डपम्प हैं? गाँव में कौन-कौन से सरकारी कर्मचारी रहते हैं या बाहर से आते-जाते हैं, और वे किस विभाग के हैं? तुम्हारे घर के लोगों को सबसे ज़्यादा किस विभाग के कर्मचारियों से काम पड़ता है? गाँव के सरपंच कौन हैं? तुम्हारी पंचायत में कितने वार्ड हैं, तुम किस वार्ड में रहते हो और तुम्हारे वार्ड मेम्बर का क्या नाम है? तुम्हारे यहाँ जो दूध सोसायटी है, उसके अध्यक्ष और सचिव कौन हैं? गाँव के कोटवार कौन हैं, वे क्या काम करते हैं? तुम्हारे यहाँ जो कोऑपरेटिव सोसायटी है, वहाँ क्या काम होता है, उसके अध्यक्ष और सचिव कौन हैं?

इस तरह के सर्वे से दो बातें हुई थीं। पहली, बच्चों ने अपने गाँव की आर्थिक और प्रशासकीय संरचना को समझा। दूसरी, वे स्वशासन के स्थानीय तौर-तरीकों से परिचित हुए। वैसे ये सर्वे या मैदानी काम बच्चों की प्रारम्भिक समझ बनाने-भर के लिए थे। इनसे बच्चों की अपने परिचित संसार को व्यवस्थित रूप से जानने की तैयारी हो जाती थी। ये बतौर शिक्षक मेरे लिए भी सुविधाजनक थे। पाठ में खुद प्रवेश करने और बच्चे को भी ले जाने में इससे आसानी हो जाती थी। इसके अलावा बच्चों को इस अध्ययन पद्धति का भी अभ्यास हो जाता था।

नवाचार की इन पुस्तकों में 'नागरिकशास्त्र' खण्ड में नागरिकता से सम्बन्धित पाठ तो थे ही, इसके अलावा कृषि, उद्योग व विकास यानी अर्थतंत्र से जुड़े भी बहुत सारे पाठ थे। कुल मिलाकर, मनुष्य की नागरिक और आर्थिक, दोनों तरह की गतिविधियों पर पाठ केन्द्रित किए गए थे।

पंचायती राज

जहाँ तक 'ग्राम पंचायत' जैसे पाठ की बात है, उनके लिए पंचायत काफी जानी-पहचानी संस्था थी। मानकुण्ड गाँव बड़ा था। उसकी पंचायत भी बड़ी थी। नज़दीक का गाँव धानी घाटी उसका एक वार्ड था। पाठ पढ़ाए जाने के दौरान एक दिन गाँव के सरपंच को बुलाकर उनसे भी कक्षा में बच्चों की बातचीत करवाई गई। संयोग से उन दिनों जो सरपंच थे, वे उसी स्कूल में पढ़ चुके थे और हम लोगों के विद्यार्थी रहे थे। सक्रिय और अच्छे विद्यार्थी! अपने पुराने स्कूल के विकास और बेहतरी में उनकी काफी दिलचस्पी थी। बच्चे भी उनसे परिचित थे। कुछ तो उनके ही गली-मोहल्ले के थे।

उस दिन उन्होंने बच्चों को पंचायत के गठन से लेकर कामकाज तक के बारे में काफी विस्तार से बताया। सरल और सीधे ढंग से! बच्चों के सवालों के जवाब भी दिए। पंचायत भवन गाँव के बीचों-बीच था। उसी से सटकर पीछे पुराना स्कूल भवन था जहाँ प्राथमिक के साथ-साथ, दो-तीन साल माध्यमिक विद्यालय की भी कक्षाएँ लगी थीं। बहरहाल, उस तरफ से गुज़रते-खेलते बच्चे पंचायत की बैठक वगैरह देखते रहते थे। इसके अलावा, आए दिन अपने घर-मोहल्ले में भी पंचायत को लेकर होती रहने वाली चर्चा सुनते रहते थे। ऐसे में, मैंने पाया कि गाँव के बच्चे होने के नाते उन्हें 'ग्राम पंचायत' जैसा पाठ समझने में काफी आसानी रही। मैंने बच्चों से सभी महिला-पुरुष पंचों के नाम पता करके आने को कहा था। सब तो नहीं लेकिन तीन बच्चे ज़रूर ला पाए जिनमें से एक उप-सरपंच और दूसरा पंचायत सचिव के परिवार का बच्चा था। महिला पंचों के नाम

छह-सात बच्चों ने मालूम कर लिए। उनमें से दो बच्चियाँ थीं। एक बच्ची एक महिला पंच के पड़ोस में ही रहती थी। इन नामों पर थोड़ी-बहुत चर्चा हुई। उनमें से कई को बच्चे जानते थे।

इन्हीं सबके बीच इस पर भी बात हुई कि उनके गली-मोहल्ले में पंचायत ने क्या काम करवाए! वैसे, सरपंच इस सिलसिले में बहुत कुछ बता ही चुके थे। बच्चों से हुई बातचीत में जो भी जानकारियाँ आईं, उनमें से ज़्यादातर हैण्डपम्प लगवाने और नालियाँ बनवाने की थीं। तब तक गाँव के गली-मोहल्ले में सीमेंट की सड़कें बनवाए जाने का सिलसिला शुरू नहीं हुआ था।

पिछले लगभग तीन दशकों से पंचायतें ग्रामीण राजनीति का मुख्य केन्द्र बन चुकी हैं। विशेषकर, त्रिस्तरीय पंचायत राज व्यवस्था लागू होने के बाद से! एक तरह से, वे राष्ट्रीय और प्रान्तीय राजनीति के लघु संस्करण के रूप में देखी जाने लगी हैं। इसके चलते ग्रामीण राजनीति में कई बदलाव भी आए हैं। बच्चे इन बदलावों को समझ भले ही नहीं पा रहे हों, देख तो रहे ही थे।

एक बात और, बच्चे त्रिस्तरीय पंचायत राज व्यवस्था लागू होने के पहले काम कर रही पंचायतों के बारे में ज़्यादा कुछ नहीं जानते थे, जबकि संविधान में वर्णित नीति निर्देशक तत्वों के आधार पर गठित पंचायतें आज़ादी मिलने के बाद से ही काम कर रही थीं। हालाँकि, उनका स्वरूप ढीला-ढाला था। न तो उनके चुनाव निर्धारित अवधि में होते थे और न वे आज की पंचायतों की तरह सक्षम थीं। उनकी तुलना में आज की पंचायतें सक्षम भी हैं और गाँवों के सार्वजनिक जीवन के केन्द्र में भी हैं। वैसे तो इनका गठन गैर-राजनैतिक आधार पर होता है लेकिन घोषित-अघोषित रूप से राजनैतिक दल उनके पीछे सक्रिय हुआ करते हैं। इससे चुनावों के समय राजनैतिक तनाव बढ़ जाता है। मानकुण्ड इस मामले में काफी संवेदनशील गाँव माना जाता था। नज़दीक के गाँव अरलावदा की तरह! कुछेक बच्चे पंचायत के भीतर-बाहर होने वाली इस उठा-पटक से काफी हद तक अवगत हुआ करते थे।

नई त्रिस्तरीय पंचायत राज व्यवस्था ने गाँवों में महिला और दलित नेतृत्व के उभरने और विकसित होने के रास्ते बनाए थे। इस पाठ के ज़रिए मैंने इस तथ्य को रेखांकित करने की कोशिश की। पंचायती राज के सन्दर्भ में अक्सर ग्राम स्वराज का भी उल्लेख होता है। हालाँकि, इस पंचायती राज का महात्मा गाँधी के सम्पूर्ण रूप से आत्मनिर्भर ग्राम स्वराज से कोई सम्बन्ध नहीं था। यूँ भी आत्मनिर्भरता के विचार की अपनी सीमाएँ थीं। इसे छठी के ‘परस्पर निर्भरता’ के पाठ के ज़रिए विस्तार से

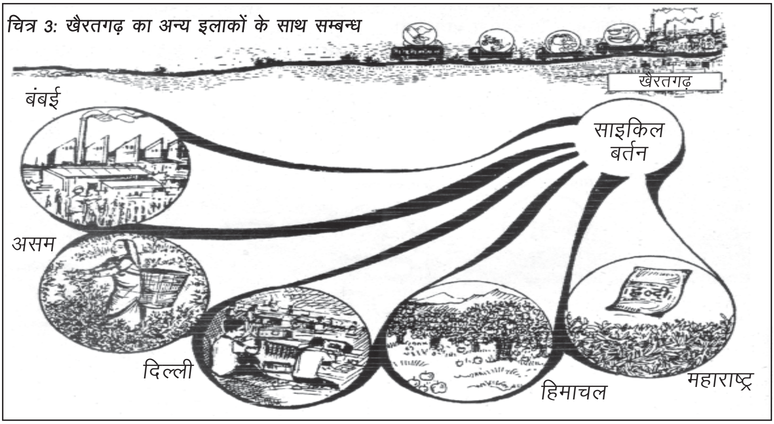

चित्र-1: *गाँव-शहर की परस्पर निर्भरता का चित्र। यह चित्र एकलव्य द्वारा प्रकाशित पुस्तक सामाजिक अध्ययन नवाचार से साभार।*

स्पष्ट कर दिया गया था। अधिकतम सम्भव आत्मनिर्भरता और पूर्ण आत्मनिर्भरता, ये दोनों एकदम अलग-अलग चीज़ें थीं। इनका अन्तर स्पष्ट करने में मुझे काफी मुश्किल आई।

इतिहास के पाठों से गुज़रते हुए बच्चों ने इतना तो जान लिया था कि मनुष्य ने शिकार युग से लेकर आज तक जो कुछ भी हासिल किया है, वह सब सामूहिक प्रयासों से ही किया है। व्यक्ति के निजी और एकल प्रयासों के पीछे भी मनुष्य की सामूहिक यात्रा के अनुभव, विचार एवं प्रेरणाएँ प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से काम करते रहे हैं। भले ही, आज सामूहिकता की वैसी ज़रूरत न महसूस होती हो लेकिन परस्पर निर्भरता की तो रहती है। बल्कि हर समय के समाज में प्रकट-अप्रकट रूप से यह निर्भरता रहा ही करती है। सामान्यतः आत्मनिर्भरता को परस्पर निर्भरता के उलट मान लिया जाता है। हालाँकि, ऐसा है नहीं! पूर्ण आत्मनिर्भरता का विचार तो यूँ भी एक परिकल्पना ही है। बहरहाल, परस्पर निर्भरता के विचार को जब बच्चों के सामने स्पष्ट किया गया तब पाठ में उल्लेखित उदाहरणों के अलावा उनके परिवार से जुड़े उदाहरण भी दिए। इसी क्रम में उन्होंने उनके गाँव के आसपास के हाट पीपल्या, इन्दौर, देवास जैसे शहरों और उन शहरों की उनके गाँव पर निर्भरता समझी। पाठ में दिए चित्र की तरह, अपने गाँव से आसपास के शहर जाने-आने वाली चीज़ों की तालिका बनाई। तालिका इतनी बड़ी बनती गई कि ब्लैक बोर्ड छोटा पड़ गया!

एक बात और थी, बच्चों को खुद गाँव का होने से पंचायत जैसे पाठ समझने में जितनी आसानी हुई, उतनी नगर पंचायत, नगरपालिका जैसी शहरों से जुड़ी संस्थाओं से सम्बन्धित पाठों को समझने में नहीं हो पाई। जबकि पास के शहर हाट पीपल्या वे अक्सर जाते-आते रहते थे। खासकर, बुधवार को लगने वाले हाट के दिन! शायद इस कारण भी कि शहरों की इन संस्थाओं से उनका सीधे-सीधे कोई काम नहीं पड़ता था। वे उनके परिचय संसार के बाहर थीं।

बच्चे और नज़दीक के हाट-बाज़ार

वैसे हाट पीपल्या के अलावा ज़्यादा नज़दीक के गाँव नेवरी में भी शुक्रवार को हाट लगता था लेकिन हाट पीपल्या का हाट बड़ा भी होता था और ज़्यादा आकर्षक भी! वह पशुओं का भी बड़ा हाट था। आसपास के कई गाँवों के लोग वहाँ हाट करने आते थे। काफी भीड़ रहती थी। हाट के दिन आसपास के कुछ गाँवों के दोपहर में लगने वाले स्कूल सवेरे की पारी में लगा दिए जाते थे। हाट में जाना बहुत सारे बच्चों के लिए एक किस्म के जश्न की तरह था। जब 70 के दशक में मैं घाट-नीचे* के गाँव करडी में पढ़ा रहा था तब वहाँ भी मैंने बच्चे ही नहीं, बड़ों तक में हाट जाने का बहुत ज़बरदस्त उत्साह देखा। आसपास के लगभग 12-13 गाँवों के केन्द्र पुँजापुरा में लगने वाला हाट भी बहुत बड़ा था। सोमवार को लगने वाला वह हाट सामान की खरीद-फरोख्त के अलावा आसपास के तमाम गाँवों के लोगों के अनौपचारिक मेलजोल का अवसर भी होता था। कई गाँव दोपहर तक काफी हद तक खाली हो जाते थे। हाट पीपल्या के हाट की भी लगभग यही स्थिति थी। हालाँकि, बाद के सालों में आसपास के कुछेक गाँवों में भी आधे-पौने हाट लगना शुरू होने से थोड़ा-सा फर्क आया था। मानकुण्ड-अरलावदा में भी ऐसे हाट लगने लगे थे। दुकानदार अपने दोपहिया वाहनों पर सामान लाते, चौक में कुछ घण्टों के लिए दुकानें लगाते और फिर लौट जाते।

हाट एक तरह से ग्रामीण अर्थतंत्र का प्रमुख घटक रहे हैं। इन हाटों का भी सप्ताह के दिनों के अनुसार एक पूरा चक्र होता था। रविवार को अगर तहसील मुख्यालय बागली में हाट लगता था तो सोमवार को पुँजापुरा! इसी तरह अगले दिन, अगले गाँव! एक चक्र चलता रहता। यह हाट में दुकानें लगाने वाले व्यापारियों के लिए सुविधाजनक रहता था। एक दिन एक जगह, दूसरे दिन दूसरी जगह का हाट! आसपास के शहर-कस्बों के व्यापारी हाट के दिन इन गाँवों में जल्दी पहुँचते। हाट में अपनी निर्धारित जगह पर दुकान लगाते।

** घाट-नीचे मानकुण्ड, बागली ब्लॉक का आदिवासी क्षेत्र है।*

चित्र-2: कक्षा छठवीं के नागरिक शास्त्र खण्ड के पाठ 'हाट बाज़ार और मण्डी' का एक चित्र। यह चित्र एकलव्य द्वारा विकसित सामाजिक अध्ययन, म.प्र. पाठ्यपुस्तक निगम से साभार।

शाम होने पर अपनी दुकान समेटकर लौट जाते, अगले दिन अगले हाट में जाने के लिए! पुस्तक में इस हाट चक्र को एक चित्र के द्वारा समझाया गया था। मैंने बच्चों की मदद से ब्लैक बोर्ड पर उस चक्र के आधार पर अपने गाँव के आसपास के गाँवों में लगने वाले हाटों का एक अलग चक्र बनाया। उनसे यह भी जानकारी निकलवाई कि उनमें से कितने बच्चे उन हाटों में गए हैं! कई बच्चे ऐसे निकले जो एक से ज़्यादा हाट गए थे।

आम तौर पर मालवी लोक जीवन में हाट के साथ जुड़वाँ तौर पर एक दूसरा शब्द प्रचलित रहा है – बाज़ार! हाट-बाज़ार! एक शब्द युग्म। अक्सर एकसाथ बोले जाने वाले! कई जगह हाट को बाज़ार ही कहा जाता है। खासकर, मराठीभाषी इलाके से लगी हुई पट्टी में, क्योंकि मराठी में हाट को बाज़ार कहा जाता है। फिर यूँ भी 'हाट' शब्द संस्कृत के 'हट्ट' का ही तद्भव रूप है जो बाज़ार के अर्थ में ही प्रचलित था। निमाड़ में हाट को बाज़ार ही कहा जाता है जबकि मालवा में ऐसा नहीं है। हाट अलग है और बाज़ार अलग! एकसाथ बोले जाने के बावजूद! इसी आधार पर बच्चों से इन दोनों के बीच के फर्क पर बात की थी।

ये हाट आदिवासी अंचलों में तो सप्ताह-भर में इकट्ठी करके रखी वनोपज और अन्य चीज़ें बेचने और ज़रूरत का सामान खरीदने का महत्वपूर्ण अवसर हुआ करते हैं। कक्षा के बच्चों का भी इन साप्ताहिक हाटों से बहुत शुरू से जुड़ाव रहता है। ऐसे में हाट, बाज़ार और मण्डी के बारे में उन्हें पढ़ाना-बताना, उनके अति-

परिचित संसार में ही उन्हें फिर से ले जाने जैसा था।

कई बच्चे जिस तरह ज़रूरी सामान खरीदने हाट पीपल्या के हाट जाते-आते थे, उसी तरह अनाज बेचने अपने घर के लोगों के साथ हाट पीपल्या मण्डी भी जा चुके थे। ऐसे में हाट, बाज़ार, मण्डी से सम्बन्धित पाठ उनके निजी अनुभव के निकट थे। साप्ताहिक हाट की ही तरह हाट पीपल्या अरलावदा-मानकुण्ड सहित आसपास के गाँवों के लिए एक बड़ी मण्डी था। यहाँ इस बात को फिर से याद दिलाना ज़रूरी है कि ग्रामीण बच्चे बहुत छोटी उम्र से ही खेती-किसानी के कामों में शामिल होने लगते हैं। घर के पशुओं को पानी पिलाने ले जाने से लेकर बोनी, निन्दाई, कटाई जैसे तमाम छोटे-बड़े कामों के समय वे मौजूद रहा करते हैं। सोयाबीन की कटाई हो या गेहूँ की, उन दिनों में बच्चों की उपस्थिति एकदम घट जाती है। मज़दूर और छोटे किसान परिवार के बच्चे तो बिलकुल ही नहीं आते। स्कूल काफी खाली रहा करते हैं। ज़ाहिर है, उनकी पढ़ाई का नुकसान भी होता है। लेकिन उनके घर-परिवारवालों को तात्कालिक आर्थिक लाभ, इस नुकसान की तुलना में बड़ा लगता है। वे इसे एक-दो जोड़े कपड़े या जूते-चप्पल वगैरह का इन्तज़ाम हो जाने की तरह देखते हैं।

पढ़ाई की तुलना में आर्थिक हित के बारे में सोचना तात्कालिक रूप से उतना गलत था भी नहीं! बहुत पहले दशहरा-दीपावली की लगभग 24-25 दिन की छुट्टियाँ लगा करती थीं। आम तौर पर ये दिन कटाई के दिन हुआ करते थे। ऐसे में त्योहार भी निपट जाते थे और कटाई भी! बच्चों की पढ़ाई का नुकसान भी नहीं होता था। लेकिन पढ़ाई के दिन बढ़ाने के इरादे से वे छुट्टियाँ निरस्त हो गईं। पढ़ाई के दिन भी बढ़ गए। शहर के बच्चों को इसका फायदा भी हुआ लेकिन गाँव के बहुत सारे बच्चे जो फसल कटाई के काम में लगते हैं, वे एक तरह से नुकसान में ही रहे। ऐसी बातों को ध्यान में रखते हुए बीच-बीच में इस तरह का सुझाव आता रहा था कि ग्रामीण शालाओं की छुट्टियाँ खेती-किसानी या फसलों के चक्र को ध्यान में रखकर तय की जानी चाहिए। हालाँकि, इस सुझाव पर शिक्षा विभाग या सरकार ने कभी ज़्यादा गौर नहीं किया।

बहरहाल, मण्डी के बारे में भी कई बच्चों के अपने अनुभव थे। मण्डी के बारे में पढ़ते वक्त, मेरे कहने पर उनमें से कुछेक ने अपने अनुभव कक्षा को सुनाए भी कि किस तरह उनके अनाज की बोली लगी, किस तरह तुलाई हुई, भुगतान कितना हुआ इत्यादि! इसमें दिलचस्प बात यह थी कि मैं मण्डी का पाठ पढ़ा ज़रूर रहा था लेकिन मैंने मण्डी का कामकाज भीतर से कभी देखा नहीं था। भले ही

मण्डी चुनावों में अन्य शिक्षक साथियों के साथ मेरी भी ड्यूटी लगती रही हो! इसके उलट, जो बच्चे मण्डी का पाठ पढ़ने जा रहे थे, उनमें से कुछ ने मण्डी भीतर से देख रखी थी। सम्भवतः यह मेरी नहीं बल्कि मेरे शिक्षक होने की सीमा थी। मेरे खयाल से शिक्षक को अपनी सीमाओं का एहसास होते रहना चाहिए ताकि उसका अपना सीखना भी जारी रहे! इस तरह, मण्डी का पाठ एक खास तरह के परिचित प्रसंग के साथ पढ़ा गया।

वस्तु विनिमय से बैंकिंग तक

नागरिकशास्त्र के कुछ पाठ पढ़ते-पढ़ाते हुए बच्चों से मुझे कई नई जानकारियाँ मिलीं या मेरी आधी-अधूरी जानकारी पूरी हुई। खासकर, बिना पैसे का लेन-देन जैसे पाठों में जो मुख्यतः आर्थिक लेन-देन में मुद्रा का उपयोग शुरू होने के पहले प्रचलन में रही वस्तु विनिमय जैसी आर्थिक क्रिया से सम्बन्धित पाठ था। मैंने देखा, गाँवों में अभी भी अनाज (वस्तु) के बदले दैनिक उपयोग की अन्य वस्तुओं का लेन-देन होता है। शहरों से लेन-देन का यह तरीका लगभग खत्म हो चुका है लेकिन गाँवों में अभी भी प्रचलन में है। आसपास की थोड़ी बड़ी जगहों से जो फल वगैरह बेचने वाले आते हैं, वे नकद के अलावा इस पद्धति से भी लेन-देन करते हैं, विशेषकर अनाज के बदले। वैसे प्लास्टिक या दीगर अटाला सामान के बदले भी लेन-देन होता है।

बच्चों ने यह भी बताया कि पूरे के बदले आधे हिस्से के बराबर तोलकर भी लेन-देन होता है, मतलब जितना अनाज लिया जाएगा, उसके बदले दी जाने वाली चीज़ अनाज के आधे वज़न के बराबर होगी। बच्चों ने गाँव में लेन-देन में प्रचलित इस तरह के और भी तरीकों के बारे में बताया। मुझे लगा कि गाँवों में सदियों से काम कर रहे अर्थतंत्र के पता नहीं कितने ज्ञात-अज्ञात ऐसे पहलू होंगे जिनका अभी भी पूरी तरह पता लगना शायद बाकी हो।

मौजूदा दौर की आर्थिक गतिविधियों का महत्वपूर्ण घटक होने से बैंक सम्बन्धी पाठ बच्चों के लिए काफी उपयोगी रहा। बैंक के कामकाज को देखना-समझना बच्चों के लिए लेन-देन के एक खास तरह के अनुभव से गुज़रना था। पिछले 30-40 सालों में बैंकिंग सेवाओं का जिस तरह का विस्तार हुआ है, उसके कारण कई गाँवों में भी बैंक सुविधा उपलब्ध हो चुकी है। मानकुण्ड में भी बैंक था। कई बच्चों को छात्रवृत्ति उस बैंक के माध्यम से ही मिलती थी। इस सिलसिले में पहले बात हुई है। इस तरह से बच्चे निजी तौर पर भी बैंक की कार्य पद्धति के बारे में काफी कुछ जानते थे।

इन्हीं सब में वे यह भी जान पाए थे कि बैंक अपनी बचत का पैसा सुरक्षित रखने का भी माध्यम है।

बैंकिंग व्यवस्था देखने-जानने के पहले तक, बचत का पैसा सुरक्षित रखने के किसी भरोसेमन्द माध्यम के बारे में उन्हें कोई विशेष जानकारी नहीं थी। ऐसा माध्यम जो आपका पैसा न सिर्फ सुरक्षित रखता हो और जब माँगा जाए तब तुरन्त देता भी हो, बल्कि जमा पैसे पर ब्याज के रूप में अतिरिक्त राशि भी देता हो। बच्चों के लिए यह एक खास तरह की जानकारी थी। इसके पहले तक तो वे यही जानते-समझते रहे थे कि पैसे घरों में पेटी-अलमारी या तिजोरी में सुरक्षित रखे जाते हैं जिसकी कभी-कभी चोरी भी हो जाती है। इस तरह से रखे गए पैसों पर कोई अतिरिक्त राशि भी नहीं मिलती। दादी-नानी की कहानियों में वे ज़मीन में गाड़कर रखे धन के बारे में भी सुना करते थे जिसकी रखवाली अक्सर कोई काला नाग करता बताया जाता था। बच्चों के पास इस तरह के गड़े हुए धन के कुछेक किस्से थे। एक-दो ने सुनाए भी। बच्चों को मज़ा आया। मुझे भी!

खैर, गाँव में जो बैंक था, उसमें कई बच्चों के परिवारवालों के खाते खुले हुए थे। फसल बेचने पर होने वाली आमदनी को खाते में जमा करने और बाद में ज़रूरत के अनुसार निकालने के बारे में वे घर में सुना करते थे। कुछ बच्चों को यह भी पता था कि पैसे पोस्ट ऑफिस में भी जमा किए जाते हैं। हालाँकि, पोस्ट ऑफिस और बैंक के काम के तरीकों में थोड़ा फर्क था लेकिन इस पर ज़्यादा चर्चा नहीं की गई। आठवीं के बैंक वाले पाठ के ज़रिए बच्चों को बैंक के कामकाज के बारे में विस्तार से जानने को मिला। उन्हें यह जानकर हैरानी भी हुई कि बैंक के ज़रिए पैसे बिना हाथ बदले भी एक से दूसरी जगह जा सकते हैं। हालाँकि, मोबाइल बैंकिंग के आज के दौर में तो पैसे एक से दूसरी जगह भेजने का चेक या डीडी वाला तरीका भी पिछड़ा हुआ लग सकता है लेकिन 80-90 के दशक में यह काफी सुरक्षित व सुविधाजनक माना जाता था, और बहुप्रचलित था।

बैंक कर्ज़ भी देते हैं, वह भी गाँव के सेठ-साहूकार द्वारा लिए जाने वाले ब्याज से कम ब्याज पर, इस बात को समझने में बच्चों को इसलिए ज़्यादा मुश्किल नहीं हुई क्योंकि सहकारी और भूमि विकास जैसे बैंक इस तरह के कृषि ऋण उपलब्ध करवाते थे। इसके अलावा, बैंक साइकिल दुकान, जूते-चप्पल की दुकान वगैरह जैसे छोटे-मोटे व्यवसायों के लिए भी सीमित अवधि के ऋण देते थे। कुछ बच्चों के परिवारों में इस तरह के ऋण लेकर व्यवसाय किए जा रहे थे। बच्चे इस लेन-देन के बारे में अपने घरों में होने वाली बातचीत में सुना करते थे। ऐसी बातचीत के माध्यम से बच्चों के पास जमा हुई जानकारियाँ मेरे लिए बैंक का पाठ पढ़ाने में काफी मददगार रहीं।

बैंक का लोगों के साथ सम्बन्ध

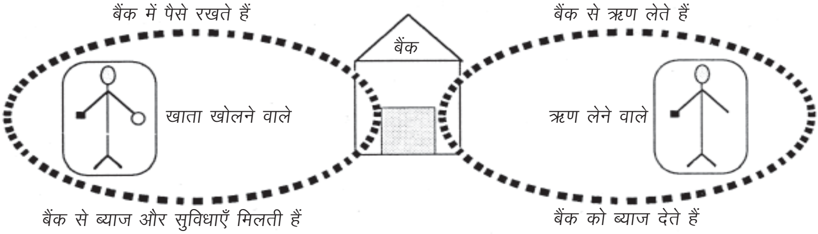

चित्र के अनुसार इन प्रश्नों के उत्तर दो:
1. *बैंक को ऋण लेने वालों से क्या फायदा होता है?*
2. *बैंक में खाता खोलने से लोगों को क्या फायदा होता है?*
3. *यदि बैंक ऋण देना बन्द कर दे तो क्या होगा?*

चित्र-3: *यह चित्र एकलव्य द्वारा प्रकाशित पुस्तक सामाजिक अध्ययन नवाचार से साभार।*

इसी के आधार पर मैं बच्चों को यह बता पाया कि बैंक किस-किस तरह के कर्ज़ देते हैं, बैंक खाते कितने प्रकार के होते हैं, पैसे कितनी तरह से जमा किए जा सकते हैं, कितनी तरह का ब्याज मिलता है, बैंक ऋण की अदायगी किस तरह से की जाती है इत्यादि। यूँ, वे अपने गाँव के उन सेठ-साहूकारों को जानते थे जिनके यहाँ बरसों से ब्याज पर उधारी लेन-देन का काम होता रहा था – मकान, ज़मीन, ज़ेवर, बरतन वगैरह गिरवी रखकर। उन्होंने अपने घरों में ऐसे सेठ-साहूकारों को लेकर प्रचलित किस्से भी सुन रखे थे। टीवी और वीसीआर (उन दिनों कुछ साल इसका काफी चलन रहा था) पर देखी कुछेक फिल्मों में भी उन्हें देख चुके थे। गाँव में इनका काफी आदर-सम्मान हुआ करता था। मतलब कि बरसों से कर्ज़ देने का काम करती आ रही इस एजेंसी के बारे में बच्चों को पता था। उनके इन्हीं मालूमात को आधार बनाकर मैंने बैंक और इस पारम्परिक एजेंसी के काम के तौर-तरीकों को एवं इनके बीच के अन्तर को स्पष्ट करने का प्रयास किया था। ऐसा करते हुए, यह समझ पाया था कि बच्चे अपने अनुभव या आसपास के अनौपचारिक माध्यमों से बहुत कुछ पहले से ही जानते हैं जिसका पढ़ाते समय उपयोग पूरी कक्षा के लिए बहुत फायदेमन्द हो सकता है।

बच्चे, टैक्स और सरकार

आठवीं कक्षा में ही बच्चों ने टैक्स (कर) के बारे में विस्तार से जाना। यूँ, तो उन्होंने इस बारे में छुटपुट ज़रूर सुन रखा था इसलिए 'टैक्स' शब्द उनके लिए उतना नया नहीं था। वे

आपसी बातचीत में अपनी समझ के अनुसार इसका उपयोग करते थे। लेकिन मानक आर्थिक अर्थों में उन्होंने इसका ज़िक्र पहली बार छठी कक्षा के पंचायत वाले पाठ में सुना था। नए पंचायती राज में पंचायतों को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर बनाने के उद्देश्य से उन्हें स्थानीय तौर पर मकान, सफाई, बिजली इत्यादि पर कर वसूल करने का अधिकार दिया गया था। साप्ताहिक हाट में लगने वाली दुकानों पर भी वे कर वसूल कर सकती थीं। 'नगरों में सुविधाओं के प्रबन्ध' से जुड़े पाठ में बताया गया था कि इसी तरह के अधिकार नगर पंचायत, नगरपालिका आदि को भी दिए गए थे। वैसे यह भी सही है कि शहरों में तो इस तरह के टैक्स वसूल हो जाते थे लेकिन गाँवों में इन्हें वसूलना ज़रूर थोड़ा मुश्किल होता था।

बहरहाल, बच्चों ने छठी कक्षा में टैक्स के बारे में पढ़ा था। बाद में सातवीं-आठवीं के इतिहास के पाठों में भी कृषि पर लगान के रूप में लिए जाने वाले कर के बारे में जाना था जो बादशाह अकबर के पहले तक अनाज के रूप में लिया जाता था और बाद में नकद में लिया जाने लगा। राज्य की आय का तब वही सबसे बड़ा स्रोत था। इसलिए लगान की दर लगातार बढ़ती गई। अँग्रेज़ों के आने के बाद लगान वसूलने का काम जब स्थानीय ज़मींदारों के ज़िम्मे आया तब उन्होंने तयशुदा लगान के अलावा पच्चीसों तरह के कर मनमर्ज़ी से अपने लिए वसूलने शुरू कर दिए। मुगल काल में तो फिर भी गनीमत थी कि बारिश न होने से या किसी दूसरी वजह से फसल न होने या बिगड़ जाने की स्थिति में लगान वसूली स्थगित कर दी जाती थी। उसे अगले साल की लगान के साथ जोड़ देते थे या माफ कर देते थे। लेकिन अँग्रेज़ शासन में लगान न देने की स्थिति में ज़मीन नीलाम कर दी जाने लगी। किसानों के भीतर इसे लेकर आक्रोश पनपना स्वाभाविक था। इसके अलावा, अँग्रेज़ों के समय और भी कई नए कर लागू कर दिए गए थे। बच्चों ने इतिहास के पाठ में भी देखा था कि अपने कारखानों में बने माल को बिकवाने के लिए ब्रिटेन ने भारत से आने वाले माल को महँगा करने के उद्देश्य से किस तरह से कर बढ़ाए थे और भारत में अपने यहाँ बने माल को सस्ता रखने के लिए उन करों को लगाने से इनकार किया था।

इस तरह से बच्चों को पहले भी विभिन्न कक्षाओं में कई तरह के पाठों के ज़रिए कर के बारे में काफी कुछ जानने को मिला था। आठवीं के कर वाले पाठ में उन्होंने कर के बारे में विधिवत, व्यवस्थित और विस्तृत रूप से जाना। उनके लिए यह जानना दिलचस्प था कि वे चाहे सीधे-सीधे कोई कर न दे रहे हों लेकिन इसके

चित्र-4: *यह चित्र एकलव्य द्वारा प्रकाशित पुस्तक सामाजिक अध्ययन नवाचार से साभार।*

बावजूद वे अप्रत्यक्ष रूप से कर चुका रहे होते हैं। इन्हीं अप्रत्यक्ष करों के कारण कारखाने में कम लागत में बनी चीज़ बहुत सारे कर लगते-लगते उन तक आकर कितनी महँगी हो जाती है! इस सिलसिले में, मैंने उनसे साइकिल, घड़ी, टीवी, पंखा, मोटरसाइकिल, ट्रैक्टर जैसी दैनिक उपयोग की चीज़ों के बारे में बात की कि किस तरह से ये चीज़ें सिर्फ कर के कारण अपनी मूल कीमत से काफी ज़्यादा कीमत की हो जाती हैं। यहाँ तक कि जिन चीज़ों से वे बनी होती हैं, उन पर या माल ढुलाई में काम आने वाले डीज़ल पर कर लग जाने से भी वे चीज़ें महँगी हो जाती हैं। इस बिन्दु तक आने के बाद मुझे लगा था कि शायद कोई बच्चा पूछेगा कि कर लगने से अगर सामान महँगा ही होता है तो फिर सरकार कर लगाती ही क्यों है? लेकिन बच्चों की तरफ से ऐसा कोई सवाल नहीं किया गया। हो सकता है, उनके दिमाग में उस वक्त कुछ और चल रहा हो। कर या किसी और चीज़ के बारे में कुछ और सोच रहे हों! या सब कुछ उन्हें आपस में गड्ड-मड्ड लग रहा हो! कई बार ऐसी स्थिति में भी बच्चे सही और ज़रूरी सवाल नहीं पूछ पाते। जिसका यह मतलब कतई नहीं होता कि वे सब कुछ ठीक तरह से समझ रहे हैं। सो, मैंने ही अपनी तरफ से वह सवाल उनके सामने रखा। कुछ देर जवाब का इन्तज़ार किया। किसी की तरफ से जवाब न आने पर फिर कुछ बच्चों से सीधे पूछा। आखिर एक लड़के ने जवाब देने की कोशिश की, "इका से सरकार की कमाई होय, ओर कँई!" (इससे सरकार की कमाई होती है, और क्या!)

“इका से सरकार की कमाई होय, ओर कँई !”

जवाब सुनकर मैंने राहत महसूस की। पाँव टिकाने-भर की ज़मीन मिलने की राहत। वरना तो यही लग रहा था कि सवाल पूछकर खुद ही उलझन में पड़ गया हूँ। पढ़ाते वक्त, मुझे वह स्थिति झंझट-भरी लगती थी जिसमें बच्चों से सवाल भी मैं करूँ और जवाब भी मैं ही दूँ। अपने ही सवाल और जवाब की इस प्रक्रिया में समस्या यह रहती थी कि बच्चा किस जगह अटका हुआ है, यह पता ही नहीं चलता था। कक्षा में कभी-कभी भद्दी स्थिति निर्मित हो जाया करती थी। मैं इसे बजाय बच्चों की मानसिक निष्क्रियता समझने के, इसे शिक्षक-छात्र के बीच सम्प्रेषण प्रक्रिया के स्थगित हो जाने या टूट जाने की तरह देखता था। एक तरह का ब्लैक होल! जिसमें से बच्चों और खुद को बाहर निकालने की कोशिश मुझे ही करनी पड़ती थी। बहरहाल, उस वक्त बहुत कुरेदने के बाद एक बच्चे के दिए उस जवाब का सिरा पकड़कर मैंने अपनी तरफ से यह बताने की कोशिश की थी कि कर के इसी पैसे से सरकार अपना सारा कामकाज चलाती है। कर्मचारियों को तनख्वाह देती है, सड़क, पुल, बाँध बनवाती है, रेल लाइन डालती है, स्कूल-कॉलेज खोलती है।

“ये ल्लो, सरकार ये सब काम इना पेसा से करे तो उका पास उका पेसा नी रे कँइ?” (ये लो, सरकार ये सारे काम इन पैसों से करती है तो उसके पास अपने पैसे नहीं रहते हैं क्या?) लड़कियों में से एक सवाल आया था। मेरी राहत थोड़ी-सी और बढ़ गई थी। लगा था कि मेरी कोशिश बेकार नहीं गई है। मैंने मोटे-मोटे तौर पर बताया कि सरकार के पास पैसे कहाँ-कहाँ से आते हैं और उन पैसों से उसे कितने सारे काम करने पड़ते हैं। यहाँ तक कि गरीबी दूर करने के लिए चलाई जा रही जिन योजनाओं के बारे में उन्होंने पढ़ा है, वैसी कई योजनाओं में भी सरकार को पैसा लगाना पड़ता है। ऐसे में कई बार पैसा कम पड़ जाता है। सरकार को उधार भी लेना पड़ता है।

“ये ल्लो, सरकार ये सब काम इना पेसा से करे तो उका पास उका पेसा नी रे कँइ ?”

"कई सरकार भी उधार ले!"

"कई सरकार भी उधार ले!" (क्या सरकार भी उधार लेती है!) मालवी में सवाल था।

"जदे, बापड़ी सरकार नी तो इत्ता पेसा काँ से लाय!" (तो फिर! नहीं तो बेचारी सरकार इतने पैसे कहाँ से लाए!!) मैंने मालवी में ही समझाया। इतने सब के बाद मुझे लगा था कि पाठ ठीक जगह पहुँच गया है। तसल्ली हुई थी। मुझे हमेशा लगता था कि पढ़ने-पढ़ाने के दौरान बच्चे के साथ-साथ शिक्षक की अपनी तसल्ली भी एक महत्वपूर्ण चीज़ हुआ करती है। वरना मामला कुछ-कुछ आधा-अधूरा-सा रहा हुआ लगता है। हालाँकि, कई बार इस तरह की तसल्ली नहीं भी हो पाती। खासकर, पढ़ना-पढ़ाना जब कभी मशीनी ढंग से निपटा हो! यूँ, नवाचार के ये पाठ मशीनी ढंग से पढ़ने-पढ़ाने की गुंजाइश कम ही देते थे।

"जदे, बापड़ी सरकार नी तो इत्ता पेसा काँ से लाय!"

प्रकाश कान्त: हिन्दी से एम.ए. और रांगेय राघव के उपन्यासों पर पीएच.डी. की है। शीर्ष पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ एवं आलेख प्रकाशित। चार उपन्यास – अब और नहीं, मक्तल, अधूरे सूर्यों के सत्य, ये दाग-दाग उजाला; कार्ल मार्क्स के जीवन एवं विचारों पर एक पुस्तक; तीन कहानी संग्रह – शहर की आखिरी चिड़िया, टोकनी भर दुनिया, अपने हिस्से का आकाश, संस्मरण – एक शहर देवास, कवि नईम और मैं, और फिल्म पर एक पुस्तक – हिंदी सिनेमा: सार्थकता की तलाश प्रकाशित हो चुकी हैं। लगभग 30 वर्षों तक ग्रामीण शालाओं में अध्यापन।

यह लेख *एकलव्य* द्वारा प्रकाशित पुस्तक *सामाजिक अध्ययन नवाचार* से साभार।

इंस्पेक्टर मातादीन चाँद पर

हरिशंकर परसाई

वैज्ञानिक कहते हैं, चाँद पर जीवन नहीं है।

सीनियर पुलिस इंस्पेक्टर मातादीन (डिपार्टमेंट में एम.डी. साब) कहते हैं – वैज्ञानिक झूठ बोलते हैं, वहाँ हमारे जैसे ही मनुष्य की आबादी है।

विज्ञान ने हमेशा इंस्पेक्टर मातादीन से मात खाई है। फिंगर प्रिण्ट विशेषज्ञ कहता रहता है, 'छुरे पर पाए गए निशान मुलज़िम की उँगलियों के नहीं हैं।' पर मातादीन उसे सज़ा दिला ही देते हैं।

मातादीन कहते हैं, "ये वैज्ञानिक केस का पूरा इंवेस्टिगेशन नहीं करते। उन्होंने चाँद का उजला हिस्सा देखा और कह दिया, वहाँ जीवन नहीं है। मैं चाँद का अँधेरा हिस्सा देखकर आया हूँ। वहाँ मनुष्य जाति मौजूद है।"

यह बात सही है क्योंकि मातादीन अँधेरे पक्ष के माहिर माने जाते हैं।

पूछा जाएगा, इंस्पेक्टर मातादीन चाँद पर क्यों गए थे? टूरिस्ट की हैसियत से या किसी फरार अपराधी को पकड़ने? नहीं, वे भारत की तरफ से सांस्कृतिक आदान-प्रदान के अन्तर्गत गए थे। चाँद सरकार ने भारत सरकार को लिखा था – 'यों हमारी सभ्यता बहुत आगे बढ़ी है। पर हमारी पुलिस में पर्याप्त सक्षमता नहीं है। वह अपराधी का पता लगाने और उसे सज़ा दिलाने में अक्सर सफल नहीं होती। सुना है, आपके यहाँ रामराज है। मेहरबानी करके किसी पुलिस अफसर को भेजें जो हमारी पुलिस को शिक्षित कर दे।'

गृहमंत्री ने सचिव से कहा, "किसी आई.जी. को भेज दो।"

सचिव ने कहा, "नहीं सर, आई. जी. नहीं भेजा जा सकता। प्रोटोकॉल का सवाल है। चाँद हमारा एक क्षुद्र

उपग्रह है। आई.जी. के रैंक के आदमी को नहीं भेजेंगे। किसी सीनियर इंस्पेक्टर को भेज देता हूँ।”

तय किया गया कि हज़ारों मामलों के इंवेस्टिगेटिंग ऑफिसर सीनियर इंस्पेक्टर मातादीन को भेज दिया जाए।

चाँद की सरकार को लिख दिया गया कि आप मातादीन को लेने के लिए पृथ्वीयान भेज दीजिए।

पुलिस मंत्री ने मातादीन को बुलाकर कहा, “तुम भारतीय पुलिस की उज्ज्वल परम्परा के दूत की हैसियत से जा रहे हो। ऐसा काम करना कि सारे अन्तरिक्ष में डिपार्टमेंट की ऐसी जय जयकार हो कि पी. एम. (प्रधानमंत्री) को भी सुनाई पड़ जाए।”

* * *

मातादीन की यात्रा का दिन आ गया। एक यान अन्तरिक्ष अड्डे पर उतरा। मातादीन सबसे विदा लेकर यान की तरफ बढ़े। वे धीरे-धीरे बुदबुदाते जा रहे थे, ‘प्रविसि नगर कीजै सब काजा, हृदय राखि कौसलपुर राजा’।

यान के पास पहुँचकर मातादीन ने मुंशी अब्दुल गफ़ूर को पुकारा, “मुंशी!”

गफ़ूर ने एड़ी मिलाकर सेल्यूट फटकारा। बोला, “जी, पेक्टसा!”

“एफ.आई.आर. रख दी है!”

“जी, पेक्टसा।”

“और रोज़नामचे का नमूना?”

“जी, पेक्टसा!”

वे यान में बैठने लगे। हवलदार बलभद्दर को बुलाकर कहा, “हमारे घर में जचकी के बखत अपने खटला (पत्नी) को मदद के लिए भेज देना।”

बलभद्दर ने कहा, “जी, पेक्टसा।”

गफ़ूर ने कहा, “आप बेफिक्र रहें पेक्टसा! मैं अपने मकान (पत्नी) को भी भेज दूँगा खिदमत के लिए।”

मातादीन ने यान के चालक से पूछा, “ड्राइविंग लाइसेंस है?”

“जी, है साहब!”

“और गाड़ी में बत्ती ठीक है?”

“जी, ठीक है।”

मातादीन ने कहा, “सब ठीक-ठाक होना चाहिए, वरना हरामज़ादे का बीच अन्तरिक्ष में, चालान कर दूँगा।”

चन्द्रमा से आए चालक ने कहा, “हमारे यहाँ आदमी से इस तरह नहीं बोलते।”

मातादीन ने कहा, “जानता हूँ बे! तुम्हारी पुलिस कमज़ोर है। अभी मैं उसे ठीक करता हूँ।”

मातादीन यान में कदम रख ही रहे थे कि हवलदार रामसजीवन भागता हुआ आया। बोला, “पेक्टसा, एस.पी. साहब के घर में से कहे हैं कि चाँद से एड़ी चमकाने का पत्थर लेते आना।”

मातादीन खुश हुए। बोले, “कह देना बाई साहब से, ज़रूर लेता आऊँगा।”

वे यान में बैठे और यान उड़ चला। पृथ्वी के वायुमण्डल से यान बाहर निकला ही था कि मातादीन ने चालक से कहा, “अबे, हॉर्न क्यों नहीं बजाता?”

चालक ने जवाब दिया, “आसपास लाखों मील तक कुछ नहीं है।”

मातादीन ने डाँटा, “मगर रूल इज़ रूल। हॉर्न बजाता चल।”

चालक अन्तरिक्ष में हॉर्न बजाता हुआ यान को चाँद पर उतार लाया। अन्तरिक्ष अड्डे पर पुलिस अधिकारी मातादीन के स्वागत के लिए खड़े थे। मातादीन रोब से उतरे और उन अफसरों के कन्धों पर नज़र डाली। वहाँ किसी के स्टार नहीं थे। फीते भी किसी के नहीं लगे थे। लिहाज़ा, मातादीन ने एड़ी मिलाना और हाथ उठाना ज़रूरी नहीं समझा। फिर उन्होंने सोचा, मैं यहाँ इंस्पेक्टर की हैसियत से नहीं, सलाहकार की हैसियत से आया हूँ।

मातादीन को वे लोग लाइन में ले गए और एक अच्छे बंगले में उन्हें टिका दिया।

एक दिन आराम करने के बाद मातादीन ने काम शुरू कर दिया। पहले उन्होंने पुलिस लाइन का मुलाहज़ा किया।

शाम को उन्होंने आई.जी. से कहा, “आपके यहाँ पुलिस लाइन में हनुमानजी का मन्दिर नहीं है। हमारे रामराज में पुलिस लाइन में हनुमानजी हैं।”

आई.जी. ने कहा, “हनुमान कौन थे – हम नहीं जानते।”

मातादीन ने कहा, “हनुमान का दर्शन हर कर्तव्यपरायण पुलिसवाले के लिए ज़रूरी है। हनुमान सुग्रीव के यहाँ स्पेशल ब्रांच में थे। उन्होंने सीता माता का पता लगाया था। ‘एबडक्शन’ का मामला था – दफा 362.

“हनुमानजी ने रावण को सज़ा वहीं दे दी। उसकी प्रॉपर्टी में आग लगा दी।

“पुलिस को यह अधिकार होना चाहिए कि अपराधी को पकड़ा और वहीं सज़ा दे दी। अदालत में जाने का झंझट नहीं। मगर यह सिस्टम अभी

हमारे रामराज में भी चालू नहीं हुआ है। हनुमानजी के काम से भगवान राम बहुत खुश हुए। वे उन्हें अयोध्या ले आए और 'टौन ड्यूटी' में तैनात कर दिया। वही हनुमान हमारे आराध्य देव हैं। मैं उनकी फोटो लेता आया हूँ।

"उस पर से मूर्तियाँ बनवाइए और हर पुलिस लाइन में स्थापित करवाइए।"

थोड़े ही दिनों में चाँद की हर पुलिस लाइन में हनुमानजी स्थापित हो गए।

मातादीन उन कारणों का अध्ययन कर रहे थे, जिनसे पुलिस लापरवाह और अलाल हो गई है। वह अपराधों पर ध्यान नहीं देती। कोई कारण नहीं मिल रहा था। एकाएक उनकी बुद्धि में एक चमक आई। उन्होंने मुंशी से कहा, "ज़रा तनखा का रजिस्टर बताओ।"

तनखा का रजिस्टर देखा, तो सब समझ गए। कारण पकड़ में आ गया।

शाम को उन्होंने पुलिस मंत्री से कहा, "मैं समझ गया कि आपकी पुलिस मुस्तैद क्यों नहीं है। आप इतनी बड़ी तनख्वाहें देते हैं, इसीलिए। सिपाही को पाँच सौ, हवलदार को सात सौ, थानेदार को हज़ार – ये क्या मज़ाक है। आखिर पुलिस अपराधी को क्यों पकड़े? हमारे यहाँ सिपाही को सौ और इंस्पेक्टर को दो सौ देते हैं तो वे चौबीस घण्टे जुर्म की तलाश करते हैं। आप तनख्वाहें फौरन घटाइए।"

पुलिस मंत्री ने कहा, "मगर यह तो अन्याय होगा। अच्छा वेतन नहीं मिलेगा तो वे काम ही क्यों करेंगे?"

मातादीन ने कहा, "इसमें कोई अन्याय नहीं है। आप देखेंगे कि पहली घटी हुई तनखा मिलते ही आपकी पुलिस की मनोवृति में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो जाएगा।"

पुलिस मंत्री ने तनख्वाहें घटा दीं और दो-तीन महीनों में सचमुच बहुत फर्क आ गया। पुलिस एकदम मुस्तैद हो गई। सोते से एकदम जाग गई। चारों तरफ नज़र रखने लगी। अपराधियों की दुनिया में घबड़ाहट छा गई। पुलिस मंत्री ने तमाम थानों के रिकॉर्ड बुलाकर देखे। पहले से कई गुना अधिक केस रजिस्टर हुए थे। उन्होंने मातादीन से कहा, "मैं आपकी सूझबूझ की तारीफ करता हूँ। आपने क्रान्ति कर दी। पर यह हुआ किस तरह?"

मातादीन ने समझाया, "बात बहुत मामूली है। कम तनखा दोगे, तो मुलाज़िम की गुज़र नहीं होगी। सौ रुपयों में सिपाही बच्चों को नहीं पाल सकता। दो सौ में इंस्पेक्टर ठाठ-बाट नहीं मेनटेन कर सकता। उसे ऊपरी आमदनी करनी ही पड़ेगी। और ऊपरी आमदनी तभी होगी जब वह अपराधी को पकड़ेगा। गरज़ कि वह अपराधों पर नज़र रखेगा। सचेत, कर्तव्यपरायण और मुस्तैद हो जाएगा।

हमारे रामराज के स्वच्छ और सक्षम प्रशासन का यही रहस्य है।"

चन्द्रलोक में इस चमत्कार की खबर फैल गई। लोग मातादीन को देखने आने लगे कि वह आदमी कैसा है जो तनखा कम करके सक्षमता ला देता है। पुलिस के लोग भी खुश थे। वे कहते, "गुरु, आप इधर न पधारते तो हम सभी कोरी तनखा से ही गुज़र करते रहते।" सरकार भी खुश थी कि मुनाफे का बजट बनने वाला था।

आधी समस्या हल हो गई। पुलिस अपराधी पकड़ने लगी थी। अब मामले की जाँच-विधि में सुधार करना रह गया था। अपराधी को पकड़ने के बाद उसे सज़ा दिलाना। मातादीन इन्तज़ार कर रहे थे कि कोई बड़ा केस हो जाए तो नमूने के तौर पर उसका इंवेस्टिगेशन कर बताएँ।

एक दिन आपसी मारपीट में एक आदमी मारा गया। मातादीन कोतवाली में आकर बैठ गए और बोले, "नमूने के लिए इस केस का 'इंवेस्टिगेशन' मैं करता हूँ। आप लोग सीखिए। यह कत्ल का केस है। कत्ल के केस में 'एविडेंस' बहुत पक्का होना चाहिए।"

कोतवाल ने कहा, "पहले कातिल का पता लगाया जाएगा, तभी तो एविडेंस इकट्‌ठा किया जाएगा।"

मातादीन ने कहा, "नहीं, उलटे मत चलो। पहले एविडेंस देखो। क्या कहीं खून मिला? किसी के कपड़ों पर या और कहीं?"

एक इंस्पेक्टर ने कहा, "हाँ, मारने वाले तो भाग गए थे। मृतक सड़क पर बेहोश पड़ा था। एक भला आदमी वहाँ रहता है। उसने उठाकर अस्पताल भेजा। उस भले आदमी के कपड़ों पर खून के दाग लग गए हैं।"

मातादीन ने कहा, "उसे फौरन गिरफ्तार करो।"

कोतवाल ने कहा, "मगर उसने तो मरते हुए आदमी की मदद की थी।"

मातादीन ने कहा, "वह सब ठीक है। पर तुम खून के दाग ढूँढने और कहाँ जाओगे? जो एविडेंस मिल रहा है, उसे तो कब्ज़े में करो।"

वह भला आदमी पकड़कर बुलवा लिया गया। उसने कहा, "मैंने तो मरते आदमी को अस्पताल भिजवाया था। मेरा क्या कसूर है?"

चाँद की पुलिस उसकी बात से एकदम प्रभावित हुई। मातादीन प्रभावित नहीं हुए। सारा पुलिस महकमा

उत्सुक था कि अब मातादीन क्या तर्क निकालते हैं।

मातादीन ने उससे कहा, “पर तुम झगड़े की जगह गए क्यों?”

उसने जवाब दिया, “मैं झगड़े की जगह नहीं गया। मेरा वहाँ मकान है। झगड़ा मेरे मकान के सामने हुआ।”

अब फिर मातादीन की प्रतिभा की परीक्षा थी। सारा महकमा उत्सुक देख रहा था।

मातादीन ने कहा, “मकान तो ठीक है। पर मैं पूछता हूँ, झगड़े की जगह जाना ही क्यों?”

इस तर्क का कोई जवाब नहीं था। वह बार-बार कहता, “मैं झगड़े की जगह नहीं गया। मेरा वहीं मकान है।”

मातादीन उसे जवाब देते, “सो ठीक है, पर झगड़े की जगह जाना ही क्यों?” इस तर्क-प्रणाली से पुलिस के लोग बहुत प्रभावित हुए।

अब मातादीनजी ने इंवेस्टिगेशन का सिद्धान्त समझाया—

“देखो, आदमी मारा गया है, तो यह पक्का है कि किसी ने उसे ज़रूर मारा। कोई कातिल है। किसी को सज़ा होनी है। सवाल है – किसको सज़ा होनी है? पुलिस के लिए यह सवाल इतना महत्व नहीं रखता जितना यह सवाल कि जुर्म किस पर साबित हो सकता है या किस पर साबित होना चाहिए। कत्ल हुआ है, तो किसी मनुष्य को सज़ा होगी ही। मारनेवाले को होती है, या बेकसूर को – यह अपने सोचने की बात नहीं है। मनुष्य-मनुष्य सब बराबर हैं। सबमें उसी परमात्मा का अंश है। हम भेदभाव नहीं करते। यह पुलिस का मानवतावाद है।

“दूसरा सवाल है, किस पर जुर्म साबित होना चाहिए। इसका निर्णय इन बातों से होगा– (1) क्या वह आदमी पुलिस के रास्ते में आता है?

(2) क्या उसे सज़ा दिलाने से ऊपर के लोग खुश होंगे?"

मातादीन को बताया गया कि वह आदमी भला है, पर पुलिस अन्याय करे तो विरोध करता है। जहाँ तक ऊपर के लोगों का सवाल है – वह वर्तमान सरकार की विरोधी राजनीति वाला है।

मातादीन ने टेबिल ठोंककर कहा, "फर्स्ट क्लास केस। पक्का एविडेंस। और ऊपर का सपोट।"

एक इंस्पेक्टर ने कहा, "पर हमारे गले यह बात नहीं उतरती है कि एक निरपराध-भले आदमी को सज़ा दिलाई जाए।"

मातादीन ने समझाया, "देखो, मैं समझा चुका हूँ कि सबमें उसी ईश्वर का अंश है। सज़ा इसे हो या कातिल को, फाँसी पर तो ईश्वर ही चढ़ेगा न! फिर तुम्हें कपड़ों पर खून मिल रहा है। इसे छोड़कर तुम कहाँ खून ढूँढते फिरोगे? तुम तो भरो एफ.आई.आर.।"

मातादीनजी ने एफ.आई.आर. भरवा दी। 'बखत ज़रूरत के लिए' जगह खाली छुड़वा दी।

दूसरे दिन पुलिस कोतवाल ने कहा, "गुरुदेव, हमारी तो बड़ी आफत है। तमाम भले आदमी आते हैं और कहते हैं, उस बेचारे बेकसूर को क्यों फँसा रहे हो? ऐसा तो चन्द्रलोक में कभी नहीं हुआ! बताइए, हम क्या जवाब दें? हम तो बहुत शर्मिन्दा हैं।"

मातादीन ने कोतवाल से कहा, "घबड़ाओ मत। शुरू-शुरू में इस काम में आदमी को शर्म आती है। आगे तुम्हें बेकसूर को छोड़ने में शर्म आएगी। हर चीज़ का जवाब है। अब आपके पास जो आए उससे कह दो, 'हम जानते हैं वह निर्दोष है, पर हम क्या करें? यह सब ऊपर से हो रहा है।' "

कोतवाल ने कहा, "तब वे एस.पी. के पास जाएँगे।"

मातादीन बोले, "एस.पी. भी कह दें कि ऊपर से हो रहा है।"

"तब वे आई.जी. के पास शिकायत करेंगे।"

"आई.जी. भी कहें कि सब ऊपर से हो रहा है।"

"तब वे लोग पुलिस मंत्री के पास पहुँचेंगे।"

पुलिस मंत्री भी कहेंगे, "भैया, मैं क्या करूँ? यह ऊपर से हो रहा है।"

"तो वे प्रधानमंत्री के पास जाएँगे।"

"प्रधानमंत्री भी कहें कि मैं जानता हूँ, वह निर्दोष है, पर यह ऊपर से हो रहा है।"

कोतवाल ने कहा, "तब वे..."

मातादीन ने कहा, "तब क्या? तब वे किसके पास जाएँगे? भगवान के पास न? मगर भगवान से पूछकर कौन लौट सका है?"

कोतवाल चुप रह गया। वह इस महान प्रतिभा से चमत्कृत था।

मातादीन ने कहा, “एक मुहावरा ‘ऊपर से हो रहा है’ हमारे देश में पच्चीस सालों से सरकारों को बचा रहा है। तुम इसे सीख लो।”

केस की तैयारी होने लगी। मातादीन ने कहा, “अब चार-छ: चश्मदीद गवाह लाओ।”

कोतवाल, “चश्मदीद गवाह कैसे मिलेंगे? जब किसी ने उसे मारते देखा ही नहीं, तो चश्मदीद गवाह कोई कैसे होगा?”

मातादीन ने सिर ठोक लिया, किन बेवकूफों के बीच फँसा दिया गवर्नमेंट ने। इन्हें तो ए-बी-सी-डी भी नहीं आती।

झल्लाकर कहा, “चश्मदीद गवाह किसे कहते हैं, जानते हो? चश्मदीद गवाह वह नहीं है जो देखे, बल्कि वह है जो कहे कि मैंने देखा।”

कोतवाल ने कहा, “ऐसा कोई क्यों कहेगा?”

मातादीन ने कहा, “कहेगा। समझ में नहीं आता, कैसे डिपार्टमेंट चलाते हो! अरे चश्मदीद गवाहों की लिस्ट पुलिस के पास पहले से रहती है। जहाँ ज़रूरत हुई, उन्हें चश्मदीद बना दिया। हमारे यहाँ ऐसे आदमी हैं, जो साल में 3-4 सौ वारदातों के चश्मदीद गवाह होते हैं। हमारी अदालतें भी मान लेती हैं कि इस आदमी में कोई दैवी शक्ति है जिससे जान लेता है कि अमुक जगह वारदात होने वाली है और वहाँ पहले से पहुँच जाता है। मैं तुम्हें चश्मदीद गवाह बनाकर देता हूँ। आठ-दस उठाईगीरों को बुलाओ, जो चोरी, मारपीट, गुण्डागर्दी करते हों। जुआ खिलाते हों या शराब उतारते हों।”

दूसरे दिन शहर के आठ-दस नवरत्न कोतवाली में हाज़िर थे। उन्हें देखकर मातादीन गद्‌गद्‌ हो गए। बहुत दिन हो गए थे ऐसे लोगों को देखे। बड़ा सूना-सूना लग रहा था।

मातादीन का प्रेम उमड़ पड़ा। उनसे कहा, “तुम लोगों ने उस आदमी को लाठी से मारते देखा था न?”

वे बोले, “नहीं देखा साब! हम वहाँ थे ही नहीं।”

मातादीन जानते थे, यह पहला मौका है। फिर उन्होंने कहा, “वहाँ नहीं थे, यह मैंने माना। पर लाठी मारते देखा तो था?”

उन लोगों को लगा कि यह पागल आदमी है। तभी ऐसी ऊटपटांग बात कहता है। वे हँसने लगे।

मातादीन ने कहा, "हँसो मत, जवाब दो।"

वे बोले, "जब थे ही नहीं, तो कैसे देखा?"

मातादीन ने गुर्राकर देखा। कहा, "कैसे देखा, सो बताता हूँ। तुम लोग जो काम करते हो – सब इधर दर्ज है। हर एक को कम-से-कम दस साल जेल में डाला जा सकता है। तुम ये काम आगे भी करना चाहते हो या जेल जाना चाहते हो?"

वे घबड़ाकर बोले, "साब, हम जेल नहीं जाना चाहते।"

मातादीन ने कहा, "ठीक। तो तुमने उस आदमी को लाठी मारते देखा। देखा न?"

वे बोले, "देखा साब। वह आदमी घर से निकला और जो लाठी मारना शुरू किया, तो वह बेचारा बेहोश होकर सड़क पर गिर पड़ा।"

मातादीन ने कहा, "ठीक है। आगे भी ऐसी वारदातें देखोगे?"

वे बोले, "साब, जो आप कहेंगे, सो देखेंगे।"

कोतवाल इस चमत्कार से थोड़ी देर को बेहोश हो गया। होश आया तो मातादीन के चरणों पर गिर पड़ा।

मातादीन ने कहा, "हटो। काम करने दो।"

कोतवाल पाँवों से लिपट गया। कहने लगा, "मैं जीवनभर इन श्रीचरणों में पड़ा रहना चाहता हूँ।"

मातादीन ने आगे की सारी कार्यप्रणाली तय कर दी। एफ.आई.आर. बदलना, बीच में पन्ने डालना, रोज़नामचा बदलना, गवाहों को तोड़ना – सब सिखा दिया।

उस आदमी को बीस साल की सज़ा हो गई।

चाँद की पुलिस शिक्षित हो चुकी थी। धड़ाधड़ केस बनने लगे और सज़ा होने लगी। चाँद की सरकार बहुत खुश थी। पुलिस की ऐसी मुस्तैदी भारत सरकार के सहयोग का नतीजा था। चाँद की संसद ने एक धन्यवाद प्रस्ताव पारित किया।

एक दिन मातादीनजी का सार्वजनिक अभिनन्दन किया गया। वे फूलों से लदे खुली जीप पर बैठे थे। आसपास जय-जयकार करते हज़ारों लोग। वे हाथ जोड़कर अपने गृहमंत्री की स्टाइल में जवाब दे रहे थे।

ज़िन्दगी में पहली बार ऐसा कर रहे थे, इसलिए थोड़ा अटपटा लग रहा था। छब्बीस साल पहले पुलिस में भरती होते वक्त किसने सोचा था कि एक दिन दूसरे लोक में उनका ऐसा अभिनन्दन होगा। वे पछताए – अच्छा होता कि इस मौके के लिए कुर्ता, टोपी और धोती ले आते।

भारत के पुलिस मंत्री टेलीविज़न पर बैठे यह दृश्य देख रहे थे और

सोच रहे थे, मेरी सद्‌भावना यात्रा के लिए वातावरण बन गया।

* * *

कुछ महीने निकल गए।

एक दिन चाँद की संसद का विशेष अधिवेशन बुलाया गया। बहुत तूफान खड़ा हुआ। गुप्त अधिवेशन था, इसलिए रिपोर्ट प्रकाशित नहीं हुई पर संसद की दीवारों से टकराकर कुछ शब्द बाहर आए।

सदस्य गुस्से से चिल्ला रहे थे–

"कोई बीमार बाप का इलाज नहीं कराता।"

"डूबते बच्चों को कोई नहीं बचाता।"

"जलते मकान की आग कोई नहीं बुझाता।"

"आदमी जानवर से बदतर हो गया है। सरकार फौरन इस्तीफा दे।"

दूसरे दिन चाँद के प्रधानमंत्री ने मातादीन को बुलाया। मातादीन ने देखा – वे एकदम बूढ़े हो गए थे। लगा, ये कई रात सोए नहीं हैं।

रुँआसे होकर प्रधानमंत्री ने कहा, "मातादीन, हम आपके और भारत सरकार के बहुत आभारी हैं। अब आप कल देश वापस लौट जाइए।"

मातादीन ने कहा, "मैं तो 'टर्म' खत्म करके ही जाऊँगा।"

प्रधानमंत्री ने कहा, "आप बाकी 'टर्म' का वेतन ले जाइए – डबल ले जाइए, तिबल ले जाइए।"

मातादीन ने कहा, "हमारा सिद्धान्त है: हमें पैसा नहीं, काम प्यारा है।"

आखिर चाँद के प्रधानमंत्री ने भारत के प्रधानमंत्री को एक गुप्त पत्र लिखा।

चौथे दिन मातादीन को वापस लौटने के लिए अपने आई.जी. का ऑर्डर मिल गया।

उन्होंने एस.पी. साहब के घर के लिए एड़ी चमकाने का पत्थर यान में रखा और चाँद से विदा हो गए।

उन्हें जाते देख पुलिस वाले रो पड़े।

बहुत अरसे तक यह रहस्य बना रहा कि आखिर चाँद में ऐसा क्या हो गया कि मातादीन को इस तरह एकदम लौटना पड़ा! चाँद के प्रधानमंत्री ने भारत के प्रधानमंत्री को क्या लिखा था?

एक दिन वह पत्र खुल ही गया। उसमें लिखा था–

'हमें इंस्पेक्टर मातादीन की सेवाएँ प्रदान करने के लिए अनेक धन्यवाद। पर अब आप उन्हें फौरन बुला लें। हम भारत को मित्रदेश समझते थे, पर आपने हमारे साथ शत्रुवत व्यवहार किया है। हम भोले लोगों से आपने विश्वासघात किया है।

'आपके मातादीन ने हमारी पुलिस को जैसा कर दिया है, उसके नतीजे ये हुए हैं:

'कोई आदमी किसी मरते हुए

आदमी के पास नहीं जाता, इस डर से कि वह कत्ल के मामले में फँसा दिया जाएगा। बेटा बीमार बाप की सेवा नहीं करता। वह डरता है, बाप मर गया तो उस पर कहीं हत्या का आरोप नहीं लगा दिया जाए। घर जलते रहते हैं और कोई बुझाने नहीं जाता – डरता है कि कहीं उस पर आग लगाने का जुर्म कायम न कर दिया जाए। बच्चे नदी में डूबते रहते हैं और कोई उन्हें नहीं बचाता, इस डर से कि उस पर बच्चों को डुबाने का आरोप न लग जाए। सारे मानवीय सम्बन्ध समाप्त हो रहे हैं। मातादीनजी ने हमारी आधी संस्कृति नष्ट कर दी है।

'अगर वे यहाँ रहे तो पूरी संस्कृति नष्ट कर देंगे। उन्हें फौरन रामराज में बुला लिया जाए।'

हरिशंकर परसाई (1924-1995): हिन्दी साहित्य के प्रसिद्ध व्यंगकार थे। व्यंग रचनाओं के अलावा उपन्यास और लेख भी लिखे। उनका जन्म जमानी, होशंगाबाद (मध्य प्रदेश) में हुआ था। वे हिन्दी के पहले रचनाकार हैं जिन्होंने व्यंग्य को विधा का दर्जा दिलाया और उसे हल्के-फुल्के मनोरंजन की परम्परागत परिधि से उबारकर समाज के व्यापक प्रश्नों से जोड़ा। साहित्य अकादमी पुरस्कार, शिक्षा सम्मान (मध्य प्रदेश शासन), शरद जोशी सम्मान आदि से सम्मानित।

सभी चित्र: अन्वेषा बरनवाल: नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ डिज़ाइन, असम से डिज़ाइन में स्नातक (B.Des.) की पढ़ाई कर रही हैं। पिछले एक वर्ष से बाल-पुस्तक चित्रांकन और दृश्यात्मक कहानी-कथन (visual storytelling) पर काम कर रही हैं।

सवालीराम

सवाल: भारतीय रुपया अमेरिकी डॉलर के मुकाबले क्यों गिरता है? इसके पीछे कौन-कौन से कारण होते हैं? क्या रुपया गिरने से भारत को नुकसान पहुँचता है, और क्या इस स्थिति से किसी देश को लाभ भी होता है?

- मानवी मुळे, कक्षा-7, सेंट जोसेफ कॉन्वेंट स्कूल, खण्डवा, मप्र

जवाब: हाल के दिनों में समाचारों में बार-बार यह सुनने को मिल रहा है कि भारतीय रुपया अमेरिकी डॉलर के मुकाबले कमज़ोर हो रहा है। एक डॉलर की कीमत लगभग ₹95 के आसपास पहुँच गई है।

पहली नज़र में यह केवल वित्तीय बाज़ार की खबर लग सकती है, लेकिन वास्तव में इसका सम्बन्ध हमारी रोज़मर्रा की ज़िन्दगी से भी है। पेट्रोल-डीज़ल की कीमतों से लेकर, विदेश में पढ़ाई, मोबाइल और इलेक्ट्रॉनिक सामान की लागत से लेकर देश की अर्थव्यवस्था तक, रुपए की स्थिति कई चीज़ों को प्रभावित करती है।

सबसे पहले यह समझना ज़रूरी है कि रुपए का गिरना क्या होता है। यदि पहले एक डॉलर खरीदने के लिए 80 रुपए देने पड़ते थे और अब 95 रुपए देने पड़ रहे हैं, तो इसका मतलब है कि रुपया डॉलर की तुलना

में कमज़ोर हुआ है, यानी कि अब वही डॉलर खरीदने के लिए हमें पहले की तुलना में अधिक रुपए खर्च करने पड़ रहे हैं।

डॉलर का भाव क्यों बढ़ गया?

इसे समझने के लिए हमें भारत में डॉलर का बाज़ार, यानी उसकी माँग और आपूर्ति (डिमांड और सप्लाई) को समझना होगा। भारत के उद्योग या व्यापार को सामग्री एवं सेवाएँ आयात करने के लिए डॉलर चाहिए क्योंकि यह एक वैश्विक मुद्रा है, जिसे सभी स्वीकार करते हैं। भारत की मूलभूत ज़रूरतों जैसे कि कच्चा तेल, खाद्य तेल, केमिकल, मशीन, दाल आदि को खरीदने (यानी आयात) के लिए डॉलर चाहिए। इनकी माँग हमेशा बनी रहती है।

दूसरी तरफ, भारत में निर्यात (एक्सपोर्ट) करने वाले उद्योग या व्यापार, डॉलर में कमाते हैं और उसे रुपए में बदलते हैं। इस तरह भारत में डॉलर की डिमांड और सप्लाई व्यापार द्वारा होती है। पिछले कई वर्षों से भारत कुल निर्यात की तुलना में कुल आयात कहीं अधिक करता है इसलिए डॉलर की माँग अधिक रही है और उसकी आपूर्ति कम रही है। इस कारण डॉलर का भाव बढ़ने वाला रुझान वर्षों से बना हुआ है। आयात-निर्यात के बीच यह असन्तुलन बुनयादी समस्या है।

कच्चे तेल के उदाहरण से वर्तमान समय में डॉलर की बढ़ती माँग को समझें। भारत अपनी ज़रूरत का लगभग 85 प्रतिशत कच्चा तेल विदेशों से खरीदता है और उसका भुगतान डॉलर में करता है। कच्चे तेल के बिना हमारा काम नहीं चल सकता। जब अन्तरराष्ट्रीय बाज़ार में किसी कारण तेल महँगा होता है, जैसे खाड़ी के देशों में युद्ध के समय, तो ऐसे मौके पर भारत में आयात करने वाली तेल कम्पनियों को तेल खरीदने के लिए अधिक डॉलर की ज़रूरत होती है। जब कुछ समय तक डॉलर की माँग बढ़ी हुई रहती है और डॉलर की आपूर्ति कम ही बनी रहती है तो असन्तुलन पैदा हो जाता है। खुले बाज़ार में यह माँग डॉलर के भाव को बढ़ा देती है। अब सभी आयात करने वालों पर इसका असर पड़ता है। हर सामान का आयात महँगा हो जाता है।

अब आपूर्ति पर नज़र डालें। उदाहरण के लिए, जब विदेशी निवेशक भारतीय शेयर बाज़ार या बॉण्ड बाज़ार में पैसा लगाते हैं, तो उनके निवेश के कारण भारत में डॉलर की आपूर्ति बढ़ जाती है। मौजूदा दौर में यह निवेश कम हो रहा है। इससे भी भारत में डॉलर की आपूर्ति कम हो रही है और डॉलर का भाव और बढ़ रहा है।

हाल के समय में ईरान-इज़राइल संघर्ष जैसी घटनाओं ने वैश्विक बाज़ारों की चिन्ताओं को बढ़ाया है।

तालिका - 1

पिछले 11 वर्षों में भारत के निर्यात, आयात एवं व्यापार सन्तुलन के आँकड़े (₹ करोड़ में)			
वित्तिय वर्ष	निर्यात	आयात	व्यापार सन्तुलन
2025-26	39,03,585	68,50,016	-29,46,432
2024-25	37,03,412	60,97,632	-23,94,220
2023-24	36,18,952	55,81,019	-19,62,067
2022-23	36,21,550	57,49,801	-21,28,251
2021-22	31,47,021	45,72,775	-14,25,753
2020-21	21,59,043	29,15,958	-7,56,914
2019-20	22,19,332	33,60,954	-11,41,623
2018-19	23,07,735	35,94,480	-12,86,746
2017-18	19,55,519	29,95,471	-10,39,953
2016-17	18,49,434	25,77,675	-7,28,242
2015-16	17,16,384	24,90,306	-7,73,921

तालिका से स्पष्ट है कि वित्तीय वर्ष 2021-22 से 2025-26 के बीच भारत का व्यापार घाटा दोगुने से भी अधिक हो गया है। वित्तीय वर्ष 2020-21 के आँकड़े एक अपवाद माने जा सकते हैं, क्योंकि उस वर्ष कोविड-19 महामारी के कारण वैश्विक व्यापार गम्भीर रूप से प्रभावित हुआ था।

एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि कोविड के बाद के पाँच वर्षों में व्यापार घाटा, कोविड से पहले के पाँच वर्षों की तुलना में कहीं अधिक तेज़ी-से बढ़ा है। व्यापार घाटे में इस तीव्र वृद्धि के कारण अमेरिकी डॉलर की माँग बढ़ी, जिसके परिणामस्वरूप पिछले कुछ वर्षों में भारतीय रुपए पर अधिक दबाव पड़ा और उसके मूल्य में अपेक्षाकृत तेज़ गिरावट देखने को मिली।

ऐसे संघर्षों के कारण तेल आपूर्ति और व्यापार मार्गों को लेकर अनिश्चितता पैदा होती है, जिसका असर ऊर्जा कीमतों और बाज़ारों पर दिखाई दे सकता है। जब भविष्य को लेकर डर का माहौल बनता है, तो दुनिया के कई देश अपने आयात को कम करते हैं। इस कटौती की वजह से भी हमारे देश के निर्यात बहुत प्रभावित होते हैं और डॉलर की आपूर्ति भी कम हो जाती है।

क्या रुपया गिरने से भारत को नुकसान होता है?

हाँ, क्योंकि हम आयात पर बहुत अधिक निर्भर हैं। पेट्रोल, डीज़ल, गैस, मोबाइल, कम्प्यूटर, ज़रूरी केमिकल और विदेश से आने वाला अन्य सामान, सबकुछ महँगा हो जाता है।

जब डॉलर महँगा हो जाता है, तो इन वस्तुओं को खरीदने की लागत बढ़ जाती है। धीरे-धीरे इसका असर बाज़ार की कीमतों और महँगाई पर दिखाई देने लगता है। पेट्रोल-डीज़ल की कीमतें बढ़ जाती हैं, क्योंकि कच्चा तेल आयातित है। यदि परिवहन महँगा होता है, तो सामग्री एवं संसाधन की ढुलाई की लागत भी बढ़ती है और इसका असर कई अन्य वस्तुओं की कीमतों पर पड़ता है। यही कारण है कि रुपए की कमज़ोरी का असर केवल एक आइटम या सेक्टर तक सीमित नहीं रहता, बल्कि आम लोगों के खर्च पर भी दिखाई देता है।

दूसरी ओर, रुपया गिरने पर भारत से अन्य देशों को निर्यात करने वाली कम्पनियों को फायदा होता है। भारत की सूचना प्रोद्योगिकी (आईटी), दवा कम्पनियाँ और अन्य निर्यात आधारित कम्पनियाँ विदेशों से डॉलर में कमाई करती हैं। जब डॉलर मज़बूत होता है, तो रुपए में बदलने (एक्सचेंज) पर उनकी आय बढ़ जाती है। इसी तरह, भारतीय उत्पाद विदेशी खरीदारों को अपेक्षाकृत सस्ते लग सकते हैं, जिससे निर्यात बढ़ने की सम्भावना बनी रहती है। ऐसी स्थिति में विदेशों में रहने वाले भारतीय जब अपने परिवारों को पैसा भेजते हैं, तो भारत में रह रहे उनके परिजनों को प्रति डॉलर के बदले कुछ अधिक रुपए मिल सकते हैं।

विदेश में खरीदने वालों के लिए हमारा सामान सस्ता हो जाता है। पर भारत के सन्दर्भ में यह सीमित है क्योंकि हमारा निर्यात का बाज़ार कम है, और हाल में, अमेरिका के अतिरिक्त टैक्स लगाने के बाद यह बाज़ार और भी सिकुड़ गया है। इसलिए हमारे निर्यात नहीं बढ़ पा रहे हैं।

रुपए के गिरने से आयात करना महँगा होता है और निर्यात सस्ता। हमारे लिए आयात-निर्यात का असन्तुलन है, मतलब नुकसान अधिक है और फायदा कम है।

क्या किसी दूसरे देश को लाभ होता है?

ऐसी स्थिति में दूसरे देश में आयात करने वालों को ज़रूर फायदा होता है। अमेरिकी डॉलर मज़बूत होता है, तो अमेरिका के लोग और कम्पनियाँ अपेक्षाकृत कम कीमत पर भारत से सामान खरीद सकती हैं। इसी तरह, जो देश भारत से सामान आयात करते हैं, उन्हें भी भारतीय वस्तुएँ सस्ती मिल सकती हैं।

दूसरी तरफ यदि किसी देश की मुद्रा मज़बूत हो जाए, तो उसके अपने निर्यात महँगे हो जाते हैं। यह उनके बाज़ार को कम कर सकता है। हर देश में विविध सामग्री और सेवाओं का आयात-निर्यात करने वाले होते हैं। जब मुद्रा कमज़ोर होती है तो आयात करने वाले को नुकसान होता है और निर्यात करने वाले को फायदा। किसी भी देश के लिए यह ज़रूरी है कि वो कुल आयात और निर्यात में सन्तुलन बनाकर चले। ऐसा सन्तुलन बने रहने पर देश की मुद्रा का थोड़ा-बहुत ऊपर-नीचे होना सामान्य बात है।

रुपए की गिरावट का असर

आम लोगों से लेकर सरकार तक हमने देखा कि जब रुपया तेज़ी-से गिरता है, तो इससे महँगाई बढ़ जाती है और देश की अर्थव्यवस्था पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

डॉलर का बाज़ार एक खुला बाज़ार है, यानी वह डॉलर की माँग-आपूर्ति पर निर्भर करता है। चूँकि हमारे देश में माँग और आपूर्ति में असन्तुलन बना हुआ है इसलिए डॉलर का भाव लगातार बढ़ने की तरफ रहता है। भारतीय रिज़र्व बैंक (आरबीआई) समय-समय पर अपने विदेशी मुद्रा भण्डार से डॉलर बेचकर रुपए की अत्यधिक गिरावट को नियंत्रित करने की कोशिश करता है, ताकि बाज़ार में अनावश्यक अस्थिरता न बढ़े।

सुमित जैन: पेशे से चार्टर्ड अकाउंटेंट हैं। *एकलव्य* में कार्यरत हैं।

गंधर्व कुमार: शासकीय हमीदिया कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय से वाणिज्य में स्नातक। *एकलव्य* की मार्केटिंग टीम के साथ इंटर्नशिप कर चुके हैं।

सम्पादन: अरविन्द सरदाना: सामाजिक विज्ञान समूह, *एकलव्य* से सम्बद्ध रहे हैं। एनसीईआरटी एवं अन्य राज्यों की पाठ्यपुस्तकों की निर्माण प्रक्रियाओं से जुड़ाव रहा है।

इस बार का सवाल: बाल और नाखून काटने पर हमें दर्द क्यों नहीं होता?

- संगीता, कक्षा-7, पचमढ़ी, मप्र

आप हमें अपने जवाब sandarbh@eklavya.in पर भेज सकते हैं।

प्रकाशित जवाब देने वाले शिक्षकों, विद्यार्थियों एवं अन्य को पुस्तकों का गिफ्ट वाउचर भेजा जाएगा जिससे वे पिटाराकार्ट से अपनी मनपसन्द किताबें खरीद सकते हैं।

शिकार की गई इल्ली को चिकनी मिट्टी के अपने कलशाकार घर में ठूँसती कुम्हार ततैया।

अब उसमें अण्डे देती हुई कुम्हार ततैया।

RNI No.: MPHIN/2007/20203

प्रकाशक, मुद्रक, टुलटुल बिस्वास द्वारा निदेशक एकलव्य फाउण्डेशन की ओर से, एकलव्य, जमनालाल बजाज परिसर,
जाटखेड़ी, भोपाल - 462 026 (म.प्र.) से प्रकाशित तथा भण्डारी प्रेस, ई-2/111, अरेरा कॉलोनी,
भोपाल - 462 016 (म.प्र.) से मुद्रित, सम्पादक: राजेश खिंदरी।